हमारा हिन्दुस्तान

लेखक
मिनू मसानी

अनुवादक
बी. पी. सिन्हा

ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
बम्बई कलकत्ता मद्रास

मूल्य १।।।)

HAMARA HINDUSTAN

HINDI TRANSLATION OF
MINOO MASANI'S
Our India

FIRST PUBLISHED	1942	प्रथम संस्करण	१९४२
REPRINTED	1943	द्वितीय संस्करण	१९४३
REPRINTED	1944	तृतीय संस्करण	१९४४
REPRINTED	1945	चतुर्थ संस्करण	१९४५
REPRINTED	1946	पंचम संस्करण	१९४६
REPRINTED	1948	षष्ठम संस्करण	१९४८
REPRINTED	1950	सप्तम संस्करण	१९५०

PRINTED BY R. A. MORAMKAR AT SHREE LAXMI NARAYAN PRESS, THAKURDWAR, BOMBAY AND PUBLISHED BY GEOFFREY CUMBERLEGE, OXFORD UNIVERSITY PRESS, BOMBAY

भूमिका

लोग कहते हैं कि थोड़ा ज्ञान जोखिम से भरा होता है। भारतीय जीवन सम्बन्धी आंकड़े इतने कम और अपूर्ण हैं कि उन पर भरोसा करके जो परिणाम हम निकाले वे शायद ठीक न हों। प्रस्तुत छोटा ग्रन्थ वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत ठीक होने का गर्व नहीं कर सकता। न तो इसमें बहुत से फुटनोट दिये जा सकते हैं जिनमें उन ग्रन्थों का संकेत हो जहां से ब्योरे की बातें तथा अंक लिये गये हैं। अतएव इस बात की और भी आवश्यकता है कि ग्रंथकार अपनी सामग्री के लिए विभिन्न मूल ग्रन्थों को कृतज्ञता प्रकट करे। ऐसी सूची पूरी तो दी नहीं जा सकती। परन्तु ग्रन्थकार निम्नलिखित का उल्लेख करना चाहता है।

जठार और वेरी कृत 'इण्डियन इकनामिक्स' १; आर्नल्ड लप्टन कृत 'हैपी इण्डिया' २; सोनी कृत 'इण्डियन इन्डिस्ट्री ऐण्ड इट्स प्राब्लेम्स' ३; ज्ञानचन्द कृत 'इण्डियाज टीमिंग मिलियन्स' २; वी० के० आर० वी० रावकृत 'इण्डियाज नेशनल इनकम' २; वाडिया कृत 'जियॉलोजी ऑफ इण्डिया' ४; राम मनोहर लोहिया कृत 'इण्डिया इन फिगर्स, ५; एच० जी० वेल्स कृत 'वर्क, वेल्थ ऐण्ड हैपीनेस ऑफ मैनकाइण्ड' ६; ओटो न्यूरेथ कृत 'माडर्न मैन इन दि मेकिंग' ७; और 'दि स्टैटिस्टिकल इयर बुक ऑफ दि लीग ऑफ नेशन्स' २।

पृष्ठ ४९-५७, ५८ और ५९ पृष्ठों पर जो पद्य दिये गये हैं वे शामराव और एल्विन कृत 'सॉंग ऑफ दि फारेस्ट' २; इलिन की 'मास्को हैज ए प्लैन' ८ और जसीमुद्दीन कृत 'दि फील्ड ऑफ दि एम्ब्रायडर्ड क्विल्ट' १ के मिसेज़ ई०एम० मिल्फर्ड द्वारा किये गये अनुवाद से लिये गये हैं।

मैं बहुत से मित्रों के परामर्श के लिये उनका अनुगृहीत हूं विशेषकर निम्न-लिखित का—न्यू कामर्स कालेज अहमदाबाद के प्रोफेसर ए० ल० दांतवाला; ऑल इण्डिया विलेज इन्डिस्ट्रीज़ एसोसिएशन के मन्त्री श्री०जे० सी० कुमारप्पा; इण्डियन कॉटन टेकनॉलाजिकल इन्स्टिट्यूट के डायरेक्टर डा० नज़ीर अहमद; बम्बई के

---

१ ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस २ एँलेन ऐण्ड अनविन ३ लॉंगमैन्स ग्रीन ४ मैकमिलन ५ यू० पी० प्रविन्शल कांग्रेस कमेटी, लखनऊ ६ हाइनमैन ७ सेकर एण्ड वारबर्ग ८ केप

रायल इन्स्टिट्यूट आफ सायन्स के प्रोफेसर एम० आर० भरूचा; टाटा हाइड्रो एलेक्ट्रिक कम्पनी लिमिटेड के श्री० एस० एस० जुवैर और बम्बई सबर्बन की एलेक्ट्रिक सप्लाई कम्पनी लिमिटेड के श्री० पी० वी करंजिया और मि० जवीरो ए० अली। श्रीमती सरोजिनी नायडू का उनके प्रोत्साहन तथा शुभेच्छा के लिए मैं विशेष रूप से अनुगृहीत हूं।

नैशनल प्लैनिंग कमेटी के मन्त्री को भी धन्यवाद देना है कि उन्होंने विभिन्न सब-कमिटियों की रिपोर्टों और मस्विदों को देखने की अनुमति दी।

बम्बई — मी० म०

सितम्बर, १९४०

सूचीपत्र

१

पाँच में एक

हर पाँच मनुष्यों में एक हिन्दुस्तानी है। बाकी चार में यह समझिये कि एक अमेरिकन, एक यूरोपियन, एक हब्शी और एक चीनी हैं। उन्हें इस तरह गिन सकते हैं।
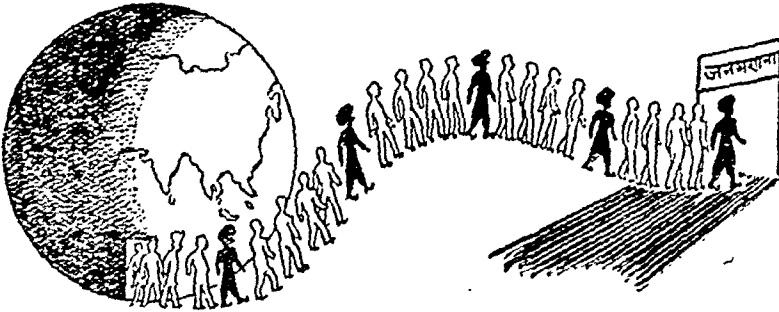
क्यों, इस में बड़ी शान मालूम होती है न? हम हिन्दुस्तानी मनुष्य जाति के पाँचवें हिस्से से कम नहीं हैं और चीन को छोड़ कर हमारे देश की जनसंख्या संसार में सबसे अधिक है। क्या इससे हृदय में यह उमंग नहीं उठती कि हमभी संसार की समस्याओं को सुलझाने, उसे और भी अच्छा बनाने में पूरा-पूरा हिस्सा लें?

और फिर हमारा देश बड़ा भी कितना है। पूर्व से पश्चिम तक २००० मील फैला हुआ है और उतना ही उत्तर से दक्षिण तक, और हमारे देश का क्षेत्रफल २० लाख वर्ग मील है और रूस को छोड़ कर यूरोपीय भूखण्ड के बराबर है। यह तो आपको बराबर के मानचित्र से मालूम हो सकता है।

हिन्दुस्तान के एक मामूली जिले का क्षेत्रफल ४००० वर्ग मील है। हमारे

स्कैंडिनेविया
ग्रेट ब्रिटेन
बेल्जियम
बाल्कन
स्पेन
जर्मनी
फ्रांस
रूमानिया
हंगरी
इटली
यूगोस्लाविया
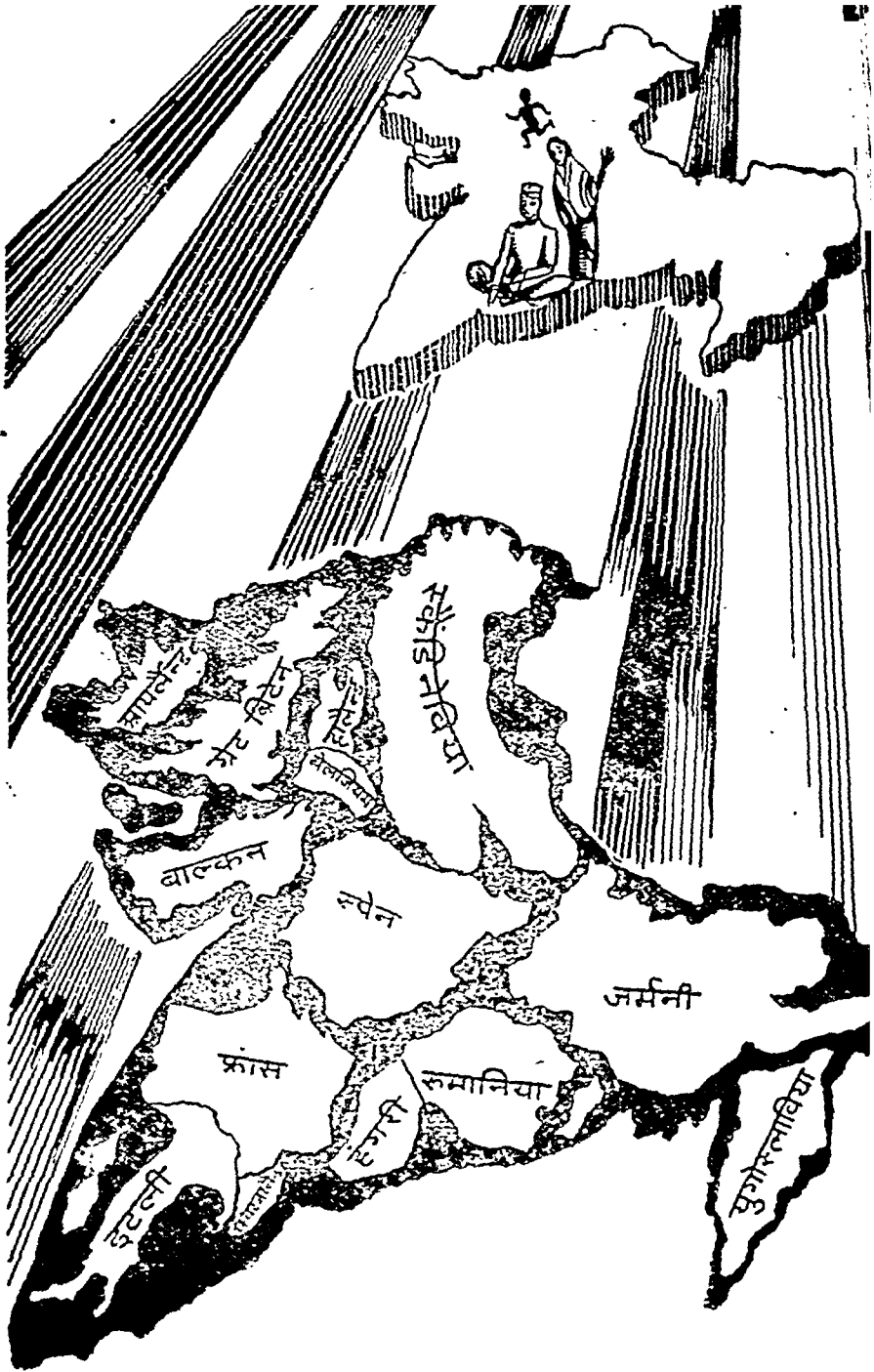
कुछ ज़िले तो यूरोप के पूरे राज्यों के बराबर हैं। उदाहरण के लिये, मद्रास के विजगापट्टम ज़िले का क्षेत्रफल और जनसंख्या डेनमार्क से अधिक है; बंगाल के मैमनसिंह ज़िले में स्विटज़रलैण्ड से अधिक लोग बसते हैं और कैनेडा के 'बड़े' डोमिनियन में जितने लोग बसते हैं उससे अधिक लोग बिहार के तिर्हुत डिविज़न में हैं।

इन बातों की याद दिलाने की आवश्यकता इस लिये पड़ती है कि संसार के छोटे से छोटे देशों को इतिहास की पुस्तकों और अख़बारों में कभी कभी बहुत अधिक स्थान मिल जाता है और उन पर बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है। बहुत सम्भव है जानकर ऐसा न किया जाता हो, मगर हमारे स्कूल के कुछ मानचित्रों में भी हमारी भौगोलिक स्थिति के ऐसे ही उल्टे-पुल्टे चित्र मिलते हैं। शायद हम आप यह बात नहीं जानते कि ऐसे एक मानचित्र में इंग्लैंड के मुक़ाबिले हिन्दुस्तान जितना बड़ा है उसका आधा ही उसे दिखाया गया है।

ऐसे तो बड़े आकार का होना ही कोई विशेष लाभ की वस्तु नहीं है। सब कुछ इसपर निर्भर है कि इस बड़े आकार का क्या उपयोग किया जाता है। बड़े आकार से तो लाभ भी हो सकता है और हानि भी। इससे हमारी कठिनाइयाँ बढ़ जाती हैं और हमारी समस्यायें भी बड़ा रूप ले लेती हैं। मगर इसके कारण हमारे लिये बड़े पैमाने पर काम करने की सुविधा भी हो जाती है।

हम हिन्दुस्तानी एक बड़ी जमींदारी के मालिक की तरह हैं। मगर हमें यह जानना है कि हमारी जमींदारी कहाँ है और कैसी जगह पर है; पास की जमींदारियों से अलग करने के लिये उसकी पक्की चौहद्दी कर दी गई है या नहीं। क्या वह सदर सड़क पर है या बड़ी दूर कहीं एक किनारे, जहाँ आदमी बहुत घूम फिर कर, अँधेरी गलियों में गुजरते हुए ही, पहुँच सकता हो?

किसी दूसरे बड़े देश के मुक़ाबिले हिन्दुस्तान को प्रकृति ने अपनी ओर से रक्षा के अधिक साधन दिये हैं। पूर्व, दक्षिण और पश्चिम में यह नीले गहरे विशाल सिन्धु से घिरा है। उत्तर में हमारी भूमि के एक छोर से दूसरे छोर तक फैले हुए हिमालय से बढ़ कर अभेद्य "सीगफ़्रीड लाइन" भी और कोई हो सकती है?

इतने पृथक और सुरक्षित होते हुए भी हम संसार से बिल्कुल ही अलग नहीं कर दिये गये हैं। इसके विपरीत, हम तो प्रकृति के प्रशस्त पथ पर डाल दिये गये मालूम होते हैं। यूरोप और तुर्की आदि सुदूर पूर्व और आस्ट्रेलिया को जानेवाले समुद्री व्यापार के जो विशेष उपयोग के मार्ग हैं, हिंदुस्तान उन पर पड़ता है। वह बड़ी आसानी से चीन, जापान, स्याम और मलाया, आस्ट्रेलिया, और न्यूज़ीलैण्ड, पूर्व और दक्षिण अफ्रीका, यूनान और मिश्र, यूरोप और रूस, ईरान, ईराक़ तथा अफ़गानिस्तान के साथ व्यापार कर सकता है।

आइये अब अन्दर दृष्टिपात करें। इस देश के अन्दर क्या-क्या है? यह देश है कैसा? जिन लोगों ने पृथ्वी की बनावट का पता लगाया है और यह जानते हैं कि पृथ्वी के अन्दर क्या-क्या है, वे बतलाते हैं कि हिन्दुस्तान साफ़ साफ़ तीन हिस्सों में बंटा हुआ है। सबसे पहले तो दक्षिण में इस देश का सबसे पुराना, पथरीला, कुछ ऊँचाई लिये हुए किन्तु समतल, त्रिकोण है। काठियावाड़ से निकल कर पूर्व को फैला हुआ विन्ध्या और सतपुरा पर्वत समूह इस हिस्से को हिन्दुस्तान के दूसरे हिस्सों से अलग कर देता है। फिर उत्तर में संसार के सबसे ऊँचे पहाड़ हिमालय का पर्वत प्रदेश है। कुछ विद्वानों का विचार है कि हिमालय अभी धीरे-धीरे ऊपर उठता ही जा रहा है। उनका कहना है कि इस प्रदेश में, जैसे कि बिहार में जो भूकम्प हुए हैं उनका कारण यही हिमालय की गतिशीलता है।

इनके बीच में, देश का तीसरा हिस्सा, पश्चिम में सिन्धु नदी की तराई से लेकर पूर्व में ब्रह्मपुत्र की तराई तक फैली हुई, गंगा की देन, कृषि के लिये विशेष रूप से उपयोगी, उपजाऊ, हरी भरी भूमि है। यह हमारे देश का नये से नया हिस्सा है। बहुत दिनों तक यह समुद्र के अन्दर था। यह प्रायद्वीप एक द्वीप था। मगर धीरे-धीरे इस पिछले समुद्र की बालू इसके तल पर जमा होती गयी। उत्तर की बड़ी २ नदियाँ हिमालय से निकल कर, तराई से बहती हुई, इस भूमध्य सागर के शान्त जल में काटी हुई मिट्टी डालती गईं। धीरे २ समुद्र का तल ऊँचा होने लगा। अपनी मिट्टी जमा करने के लिये अच्छी सी जगह तलाश करते करते नदियों को और आगे बढ़ना

पूर्व को हवाई मार्ग
कराची
यूरोप को
बम्बई
अफ्रीका को
कलकत्ता
मद्रास
सुदूरपूर्व को
कोलम्बो
आस्ट्रेलिया को
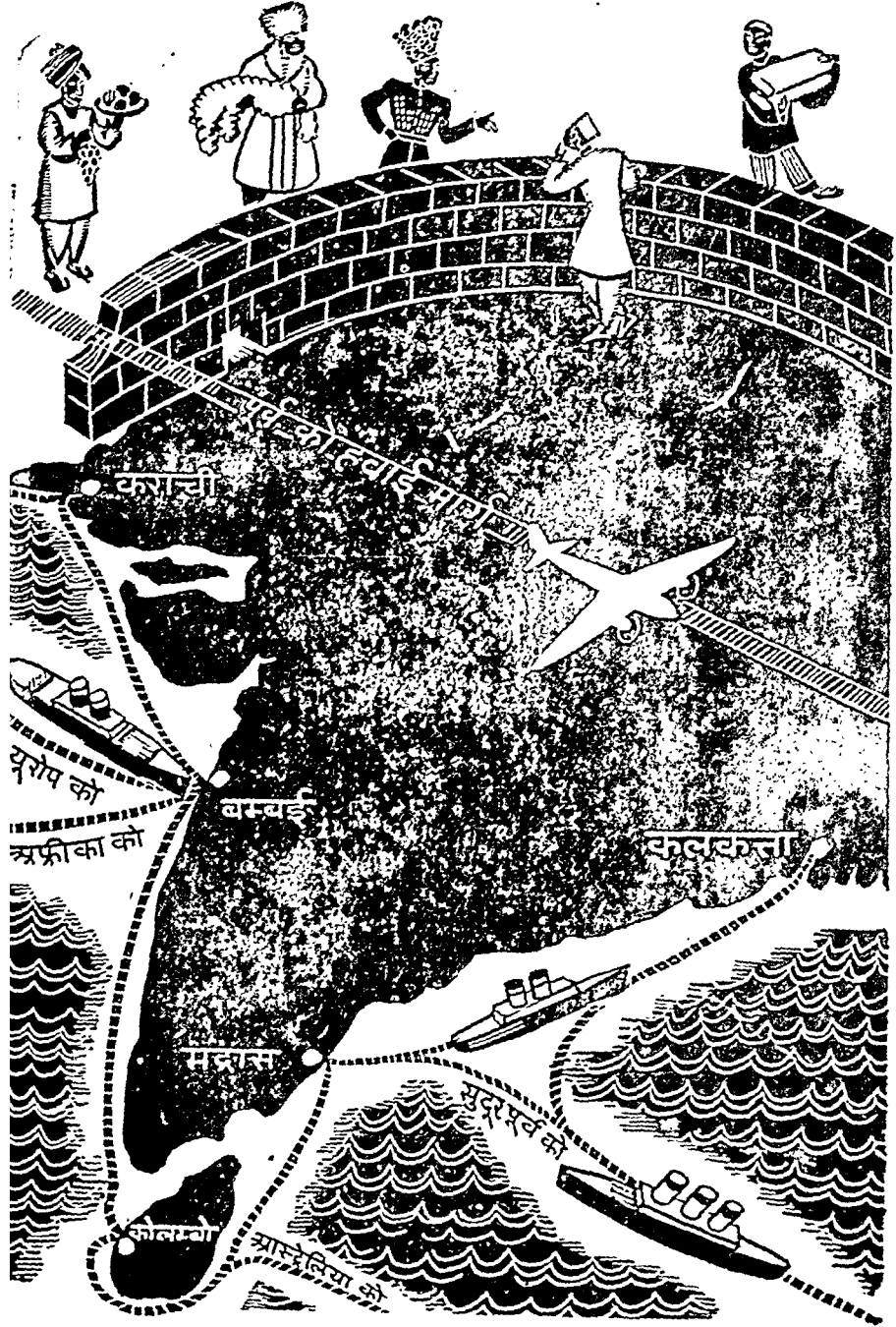
पड़ा। और इस तरह सिन्धु और गंगा नदियों के आस-पास की समतल भूमि बन गई। प्रायद्वीप अब द्वीप नहीं रह गया। बीच का रिक्त स्थान भर गया था। संसार के सबसे अधिक उपजाऊ प्रदेश, हिन्दुस्तान की इस समतल भूमि ने दक्षिण भारत के प्रायद्वीप को एशिया के पहाड़ों से मिला दिया।

हिमालय का हमारे देश पर बड़ा प्रभाव है। सबसे पहले तो इसका प्रभाव हमारी जलवायु और हमारी ज़मीन पर पड़ता है। मध्य एशिया की रेगिस्तानी हवा को उधर ही रोक कर, इसने हिन्दुस्तान को भी उसी तरह रेगिस्तान बनने से बचा रक्खा है। अगर ऐसा न होता तो यह रेगिस्तान दक्षिण की ओर बढ़ आता। इस सहायक पर्वत श्रेणी के ही कारण हिन्दुस्तान की जलवायु इतनी सुहावनी रहती है। तभी इसका वर्णन करते हुए एक अँग्रेज़ ने कहा था कि हिन्दुस्तान के सभी हिस्सों में कुछ महीने बड़े आनन्द के होते हैं और कुछ हिस्सों में तो साल भर ही जलवायु बहुत आनन्द दायक होती है।

एक बात और। हिन्दुस्तान की मुख्य नदियाँ कहाँ से निकलती हैं? फिर वही हिमालय! उसीकी ढालों से सिन्धु, गंगा और ब्रह्मपुत्रा आदि नदियाँ निकल कर उत्तरी हिन्दुस्तान में रहने वालों को पानी पहुँचाती हैं, खेतों की सिंचाई करती हैं और आवागमन के साधन प्रस्तुत करती हैं। इसके अलावा अपनी उपजाऊ मिट्टियों से जमीन को वह और भी अधिक उपजाऊ बनाती जा रही हैं।

पहाड़ से समुद्र तक इन नदियों का बहना हमेशा जारी रखने के लिये प्रकृति ने बडे चमत्कारिक साधन एकत्रित किये हैं—ऐसे चमत्कार के साधन जैसे कि अलादीन के चिराग़ का जिन्न इकट्ठा किया करता था। यह जिन्न हमारा परिचित मित्र मौनसून है। हर वर्ष के मध्य में यह हमें सूर्य, बादल, हवा और वर्षा के सहयोग से बहुत अधिक पानी समुद्र से लेकर पहाड़ों की चोटियों पर पहुँचाता है। यह दूसरे पृष्ट पर अंकित चित्र से आप समझ सकेंगे। मौनसून हिन्दुस्तान के तपे और सूखे हिस्सों को सींचता भी है।

मौनसून के अतिरिक्त हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय वस्तु इस देश के लोग, इस देश की भूमि और इस देश की जलवायु की विभिन्नता है। कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि विषुवरेखा से कुमारी अन्तरीप सिर्फ ८° उत्तर है और कश्मीर में गिलगित ३४° उत्तर है। हिन्दुस्तान में हर तरह की जलवायु है, यहाँ के मैदानों की चिलचिलाती गर्मी कहीं कहीं अफ्रीका के अधिक से अधिक गर्म स्थानों की तरह है—सिन्ध के जैकोबाबाद का ताप गर्मियों में १२५° तक बढ़ जाता है—दुसरी ओर सर्दी के मौसम में बर्फ पड़ने तक की सर्दी पड़ती है। हिमालय प्रदेश की सर्दी दक्षिणी ध्रुव देश की ठंडका

मुक़ाबिला करती है। आसाम की पहाड़ियों पर स्थित चेरापूंजी में
४६० इंच वर्षा होती है। किन्तु सिन्धु के ऊपरी भागों में सिर्फ २ इंच ही वर्षा
होती है। साधारणतः हम लोगों के आठ महीने सूखे ही बीतते हैं और बाकी
चार महीनों में लगातार वर्षा होती रहती है। एक ओर तो सिन्धु और गंगा
का उर्वर विशाल क्षेत्र है जिसमें लगभग सभी कुछ पैदा हो सकता है। दूसरी
ओर हमारे प्रायद्वीप के किनारे मालाबार जैसे घने जंगल हैं। मगर सिन्ध,
राजपूताना और कच्छ के जैसे सूखे मरु-प्रदेश भी हैं।

कितने बार किसी किसी को देखते ही हम कह देते हैं—हमें इसकी मुख
कृति अच्छी नहीं लगती या यह तो बड़ा अच्छा आदमी मालूम पड़ता है।
क्यों? इसलिये न कि हमारे अन्तर से यह ध्वनि निकलती है कि ऐसी मुखा-
कृति का आदमी अच्छा नहीं हो सकता या जिसकी आंखों से एक विशेष प्रकार
के भाव टपकते हैं वह अवश्य बहुत अच्छा आदमी होगा। यह अन्तर्ध्वनि
प्रायः सच्ची निकलती है—कभी-कभी हम गलती भी कर जाते हैं। किसी
भी मनुष्य के व्यक्तित्व का ज्ञान साधारणतया उसकी मुखाकृति और भाव
भंगिमा से होता है। जमीन, पहाड़ियाँ, नदियाँ और जलवायु देश की

आकृति हैं और वहाँ के नर-नारी उसके मस्तिष्क और आत्मा हैं। मगर यहाँ
की हालत बिल्कुल उल्टी है क्योंकि इस देश के प्राकृतिक स्वरूप के निर्धारित
हो जाने के बहुत दिनों बाद यहाँ मनुष्यों का आगमन हुआ। तभी तो हिन्दु-
स्तान की आकृति का प्रतिबिम्ब इसके मस्तिष्क और आत्मा पर पड़ा है। इस-
लिये यह स्वभाविक है कि यहाँ की विभिन्न प्राकृतिक विशेषताओं का पूरा-पूरा

जन शक्ति
४०,००,००,०००

प्रभाव इस देश के रहने वालों पर पड़ा हो। एक हिन्दुस्तानी हिटलर की परम-प्रिय नार्डिक जाति के गोरे से गोरे लोगों की तरह गोरा भी हो सकता है और अफ्रीका में रहने वाले हब्शियों की तरह काला भी हो सकता है। हिन्दुस्तानियों में लम्बे से लम्बे लोग भी मिलते हैं और उनमें मावरी जंगलियों की तरह छोटे और नाटे लोग भी होते हैं। एक
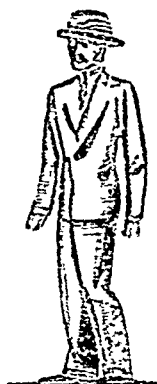
हिन्दुस्तानी इस चित्र की तरह भी हो सकता है और उस चित्र की तरह भी। वह लम्बा चौड़ा और मजबूत भी होता है और दुबला, पतला और कमजोर भी। उनके विचार और रहन-सहन का विचार करते हुए १९४९ में भी आप उन्हें पाँचवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक की अवस्था में रहते पायेंगे। शायद सोवियट रूस को छोड़ कर आपको संसार के और किसी भी भाग में इतने प्रकार के आदमी नहीं मिलेंगे जितने कि हिन्दुस्तान में मिलते हैं।

और इस देश की चालीस करोड़ की जनसंख्या इसे कितनी बड़ी शक्ति प्रदान करती है। चीन को छोड़ कर संसार में सबसे बड़ी जनशक्ति हिन्दुस्तान की है!

हम इतने हैं और इतने विभिन्न हैं, यह बात हमारे सुख और शान्ति के साथ रहने के लिए बड़ी कठिन समस्याएं खड़ी कर देती है। दूसरी ओर जरा यह भी सोचिये कि हमें इससे कितनी बड़ी शक्ति प्राप्त होती है और हो सकती है!

मनुष्यों ने अपने लिये खाना, कपड़ा, मकान आदि आवश्यक वस्तुएँ इकट्ठा करने में बहुत बड़ी उन्नति की है। यह उनके अंदर बढ़ते हुए श्रम विभाग का फल है। आपके पिता खाने की सभी चीजें स्वयं पैदा नहीं करते; न अपनी आवश्यक वस्तुएँ आप बनाते हैं। क्यों ठीक है न? वे बड़े होशियार हैं। अनाज और चावल पैदा करने के मामले में एक किसान के श्रेष्ठ अनुभवों का लाभ उठाते हैं। इससे भी अधिक लाभ तो वे उन लोगों की बड़ी
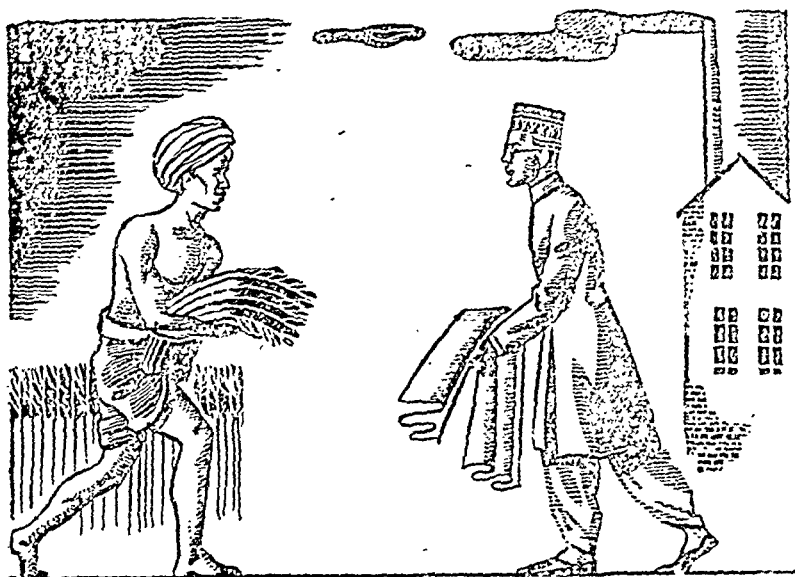
बढ़ी कारीगरी से उठाते हैं जो उनके लिये कपडे, जूते, पुस्तकें और अस्तुरे बनाते हैं। यदि वे अपने सब काम स्वयं ही करना चाहते तो बजाय अपनी इस चतुराई के (अरे ! यह क्या कहा? बड़ों की चतुराई में भी कोई शक हो सकता है !) उनका बहुत काम नहीं चलता। क्या वे ऐसा कर सकते? बिलकुल नहीं, वे ऐसा नहीं कर पाते। हम लोगों में से कोई भी, शक्तिशाली से शक्तिशाली और चालाक से चालाक, इतना समय और इतनी शक्ति नहीं पा सकता कि वह अपनी सारी दैनिक आवश्यकताओं को या उसके बीसवें हिस्से को भी पूरा कर ले। इतने दिनों के अनुभव से हमने यह सीखा है। हम लोगों ने सारे काम आपस में बाँट लिये है। हम मे से कुछ खेतों में चावल, गेहूँ, तरकारी और फल इत्यादि खाने की चीजें पैदा करते हैं, दूसरे कारखानों में कपडे, जूते, मोटर गाड़ियाँ, रेडियो तथा अन्य वस्तुएँ बनाते हैं और कुछ लोग मेज़ पर बैठे-बैठे पुस्तकें ही लिखते हैं।

आज कल यह सिलसिला इतनी दूर पहुँच गया है कि एक छोटे से छोटा कपडे का टुकड़ा बनाने में बीसों मज़दूर तरह तरह के काम किया करते हैं। कपडे

बुनने के लिये बहुत से तरीके काम में लाये जाते हैं। कोई सिर्फ रुई पैदा करता है, दूसरा उसे साफ़ करता है, तीसरा उसे जमाता है, चौथा उसे धुनता है; पाँचवाँ उससे सूत निकालता है और छठा उनसे कपड़े तैयार करता है अन्त में उस कपड़े से पहनने के लिये कुछ चीजें तैयार की जाती हैं।

तरह-तरह के लोग तरह-तरह के काम खूबी के साथ कर सकते हैं। लोगों में भिन्न-भिन्न प्रकार की शारीरिक और मानसिक विशेषतायें होती हैं। इस कारण वे किसी विशेष प्रकार के काम के लिये योग्य अथवा अयोग्य होते हैं। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार की ज़मीनें तरह-तरह की फ़स्लें पैदा करती हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार की जलवायु भी उस जगह की गर्मी, सर्दी, नमी और खुश्की के अनुसार, विशेष प्रकार की फ़स्ल या पैदावार के लिये अच्छी या बुरी साबित होती हैं।

ज़रा सोचिये तो हिन्दुस्तान कितना भाग्यशाली है और इसे कितना सुसमृद्ध होना चाहिये क्योंकि यहाँ हर तरह के लोग बसते हैं, हर तरह की जमीनें हैं और हर तरह की जलवायु है।

इसके माने यह होते हैं कि हिन्दुस्तान एक ऐसा देश है जहाँ कहीं न कहीं वह सब वस्तुएँ पैदा होती हैं जिनका प्रयोग कर के यहाँ के लोगों की सभी आवश्यक वस्तुएँ तैयार की जा सकती हैं। मतलब यह है कि हम हिन्दुस्तानी अपनी आवश्यकता की प्रायः सभी वस्तुएँ पैदा कर सकते हैं और बना सकते हैं। क्या एक मिनट के लिये भी आप यह सोच सकते हैं कि विलायत में रुई पैदा हो सकती है या अरब में सेब? मगर हिन्दुस्तान में हम स्वदेशी रुई भी पैदा कर सकते हैं और स्वदेशी सेब भी।

२

क्या हम सूर्य को खा सकते हैं?

अंग्रेज़ महाकवि मिल्टन ने अपनी सर्वोत्तम कविता "खोया स्वर्ग" (*Paradise Lost*) में "औरमस और इण्ड" की समृद्धि का वर्णन किया है। सचमुच पुराने ज़माने में हिन्दुस्तान के धन-वैभव की कहानी प्रसिद्ध थी।

यहाँ के सोने, चाँदी, हीरे, जवाहिरात, रेशम, मुशक और कपूर आदि की कहानियाँ सुन कर दूर देश के लोगों की कल्पनाशक्ति विकल हो उठी थी। और वे हिन्दुस्तान के धन–वैभव के लिये तरसने लगे थे। यदि आप मुझसे पूछें कि हिन्दुस्तान की सबसे बहुमूल्य सम्पत्ति क्या थी या है तो मैं शायद निजाम हैदराबाद के महलों में बन्द सोने के ढेर की ओर संकेत नहीं करूंगा। मै कारखानों और बड़ी बड़ी दुकानों के करोड़पति मालिकों के बैंकों में जमा किये गये रुपयों पर भी संकेत नहीं करूँगा, और न ही अमीरों की आलीशान इमारतों की ओर मेरा संकेत होगा; बल्कि मेरा ध्यान तो सूर्य, भूमि, नदियाँ, वर्षा और अपने इस विशाल देश के इन ऊँचे पहाड़ों की ओर होगा और इनमे सबसे अधिक तो उन करोड़ों नर-नारियों की ओर होगा जो यहाँ रहते हैं।

शायद बीसवीं सदी के व्यावहारिक यथार्थवादी नवयुवकों की भाँति आप भी इस बात को स्वीकार करने में हिचकेंगे। आप कह उठेंगे, "हम सूर्य को तो खा नहीं सकते, न नदियों को पी सकते हैं और न पहाड़ों के भरोसे जी ही सकते हैं।" किन्तु क्या आप ऐसा कर नहीं सकते? क्या आपको पूरा-पूरा विश्वास है कि आप ऐसा करते नहीं? मैं केवल शब्दार्थ की ओर नहीं जाता हूँ। यद्यपि कुछ ज्ञानी पुरुषों या महात्माओं के विषय में यह भी कहना अधिक गलत नहीं होगा मगर मज़ाक़ की बात छोड़िये। क्या हम सब

सूर्य
नाइट्रेट

अपने खाने, पीने, पहनने और रहने की वस्तुएँ इन्हीं आधारभूत वस्तुओं से नहीं लेते हैं ?

उदाहरण के लिये, आप सब्जी ही ले लीजिये। वे सूर्य की किरणों, मिट्टी, पानी, और हवा के अलावा और हैं ही क्या ? सब्जियों का बहुत बड़ा हिस्सा तो पानी होता है। हवा से वे एक 'गैस'–कार्बन डाइऑक्साइड (Carbon dioxide) लेती हैं और ज़मीन से नमक जिसे ' नाइट्रेट्स ' (nitrates)कहते हैं। यह वस्तुएँ सभी सब्ज़ी का अत्यन्त आवश्यक अंश होती हैं। वह शक्ति, जो इन वस्तुओं को भोजन के योग्य बनाती है, सूर्य की रोशनी और गर्मी से मिलती है। क्या आपको मालूम है कि गोभी में, जो आप प्रायः खाते हैं, ९१.५ प्रतिशतक पानी रहता है ?

यह तो केवल उदाहरण है। सच पूछिये तो यह वस्तुएँ तो आपको सोचने और समझने का अवसर देती हैं जिससे कहीं स्कूल के किसी अध्यापक के कहने पर आप यह न समझ बैठें कि सचमुच किसी देश का धन उसके बैंकों में जमा होता है। आप विश्वास रखिये कि इस विषय में आप औरों से अधिक जानते हैं। ज़रा सोचिये तो। हिन्दुस्तान में इतनी काफ़ी धूप और वर्षा होती है कि सभी ज़िलों में साल में दो फ़सलें तैयार की जा सकती हैं और कहीं-कहीं तो तीन। और फिर बेशक आप शान से, मज़े से मुस्करा दीजिये—मानों आप सबसे अधिक जानते हैं।

अच्छा तो आइये, हम अपने देश की सम्पत्ति की एक छोटी सी सूची तैयार कर लें। यह आवश्यक नहीं कि वह पूरी से पूरी हो। बड़े, बूढ़े, विद्वान अध्यापकों ने ऐसी सूची तैयार करने की चेष्टा में मोटी-मोटी किताबें लिख डाली, फिर भी वे अधूरी ही रहीं। तो आइये थोड़ी-सी वस्तुएँ चुन लें जिनके द्वारा हम यह जान सकें कि हम कितने धनी हैं। हम में से अधिकांश लोग यह नहीं जानते और व्यर्थ ही उन्हें रंज और बेबसी सताया करती है। तो फिर इन वस्तुओं की सूची में सबसे ऊपर क्या रक्खा जाय ? मेरे विचार में इसमें नम्रता दिखाने की कोई आवश्यकता नहीं है। हमें सबसे पहले अपनेको ही रखना चाहिये। एक बहुत बड़े अँग्रेज़ विचारक और मानवता के पुजारी, रस्किनने

एक छोटी सी पुस्तक 'सीसेम एण्ड लिलीज़' (*Sesame and Lilies*) लिखी है। इसे आप शायद स्कूल या कालेज में पढ़ेंगे। वह यह कहते कभी नहीं थकते थे कि किसी भी देश की सबसे बहुमूल्य वस्तु उस देश के सुखी और स्वस्थ निवासी हैं। बात तो वह ठीक ही कह गये।

जरा सोचिये तो कि हिन्दुस्तान का यह ४० करोड का जनसमूह इस देश को कितनी बड़ी जनशक्ति प्रदान करता है। इस महान बल और शक्ति के द्वारा क्या-क्या नहीं किया जा सकता? इसमें किसी प्रकार की अत्युक्ति नहीं कि, सभी बातों का विचार करते हुए, इस देश के लोग अन्य किसी भी जाति से बुद्धि में कम नहीं हैं; वास्तव में इन्हें एक अपूर्व सभ्यता और पुरातन सदाचार का सहारा रहा है। निःसन्देह यहाँ की गर्म जलवायु आलस्य पैदा करती है तथा कार्यक्षमता और कार्यकुशलता के लिए हानिकारक है। लेकिन जब कभी हिन्दुस्तानियों को दूसरी जाति के लोगों के साथ बराबरी की हैसियत में काम करने का अवसर मिला है यह औरों के मुकाबिले में हर तरह से अच्छे उतरे हैं। उदाहरण के लिये, बहुत से हिन्दुस्तानी अमेरिका के कैलिफोर्निया (California) नामक प्रदेश में बागों और खेतों में काम करते आ रहे हैं; वे ओरेगन, वाशिंगटन और कैनेडा के ब्रिटिश कोलम्बिया के लकड़ियों के कारखानों में भी काम करते आये हैं। वहाँ कार्यकुशलता में अमेरिका, कैनेडा, मेक्सिको, चीन और जापान के निवासियों से हिन्दुस्तानी किसी प्रकार भी कम नहीं, उनके बराबर ही रहे। जैसा कि हम देख चुके हैं, गुणों के साथ-साथ हम में अनगिनत विभिन्नताएँ भी हैं।

सूची में दूसरी जगह हमें अपने देश के पशुओं को देनी चाहिये। ये भी हमारी तरह जानदार हैं। इस देश में सब तरह के पशु पाय जाते हैं। हाथी से लेकर साँप और मच्छड़ सभी तरह के जीव हमारे देश में हैं। इनमें सबसे अधिक उपयोगी मवेशी होते हैं। इनकी संख्या हमारे देश में १८ करोड़ है। यह दुनिया के मवेशियों की एक तिहाई के बराबर है। हमारे यहाँ भेड़ और बकरों की संख्या ८ करोड़ ७० लाख है। यह सारी दुनियाँ की संख्या का सातवाँ भाग हैं।

इसी सूची म तीसरा स्थान सूर्य का है। लेकिन आप में से कुछ लोग प्रतिवाद करेंगे—"सूर्य तो सभी देशों में है।" लेकिन क्या यह सच है? प्रश्न यह है कि हमें सूर्य कितना और कितनी देर के लिये मिलता है। इसमें कोई शक नहीं कि सूर्य हम लोगों की एक विशेष सम्पत्ति है। मैं जानता हूं कि कुछ लोगों का विचार है कि हिन्दुस्तान में आवश्यकता से कहीं अधिक सूर्य मिलता है। निःसंदेह इसकी गर्मी से हमें परेशानी होती है; प्यास भी बढ़ती है। लेकिन दूसरी तरफ़ ज़रा सोचिये तो कि वह हमारे लिये क्या-क्या करता है? इसकी तेज़ किरणें सदा हमारे काम आती हैं। यही हम लोगों के शरीर में जीवन और शक्ति का संचार करती हैं; हमारी जमीन को फ़ायदा पहुँचाती हैं और उपजाऊ बनाती हैं; हिन्द-महासागर का पानी बादलों में पहुँचाती हैं जिसमें मौनसून उन्हें हिमालय तक पहुँचा दे और फिर आसपास की ज़मीनों पर वर्षा कर दे। यह नालियों और दलदल के गन्दे पानी को सुखा डालता है और अनेकों हानिकारक कीड़ों को मार डालता है। फिर वह बिल्कुल अकारण नहीं कि गर्म देश के रहने वाले, क्या हिन्दु क्या ईरानी, सूर्य की पूजा करते आये हैं; उसके आगे सूर्य नमस्कार करते आये हैं।

यह मौनसून, जिससे हमारे किसान अपनी ज़मीनों के लिये पानी पाने की आशा लगाये रहते हैं, हमारी चौथी विशेष सम्पत्ति है। हम पहले ही यह जान चुके हैं कि यही मौनसून की बादल समुद्र से पानी लेकर पहाड़ों की चोटियों पर पहुँचाते हैं और इस तरह नदियों के प्रवाह को बनाये रखते हैं।

हमारे पहाड़—हिमालय और उससे छोटे अन्य पर्वतों का स्थान हमारी सूची में इसके बाद आता है। ये हम लोगों को अन्य जातियों के हमले तथा मध्य एशिया की गर्म और सूखी हवाओं से बचाते हैं। हवाएं हमारे यहां की हरियाली को भी नष्ट भ्रष्ट करके सारे उत्तरी भारत को मरुभूमि बना देती। ये पहाड़ हमारे प्राकृतिक जलाशय हैं। इससे नदियाँ और झरने निकल कर हमारी समतल भूमि तक पहुँचते हैं। बीमार और थके मांदे लोगों के लिए ये प्रकृतिदत्त स्वास्थ्यगृह और विश्राम-स्थल का काम करते हैं, जहाँ गर्मी से बचने के लिये लोग जाते हैं।

इसके बाद हमारी नदियाँ हैं। ये नदियाँ हमारी सूखी ज़मीनों व सींचती हैं। नदियाँ भी हमारी और आपकी तरह ही सूखी जाती हैं औ प्यासी रहा करती हैं। इसके अलावा बहता पानी, जैसा कि हम आगे च कर देखेंगे, उस शक्ति का महान उद्गम स्थान है जिसे तार में बन्दी करके ह बिजली का नाम देते हैं। जल से शक्ति उत्पन्न करने की सामग्री, कैनेडा औ अमेरिका को छोड़ कर, हमारे देश में संसार में सबसे अच्छी है।

और हवा? हां, हवा को लीजिये। यह हम लोगों को तरोताज़ा त रखती ही है। यदि हम लोग हिन्दुस्तान में चारों ओर हवा की चक्कियाँ लग दें और इनसे पैदा होने वाली शक्ति जमा करें तो एक लेखक का विचार है वि हम लोग इतनी विद्युत शक्ति जुटा लेंगे कि सारे संसार का काम चल सके!

हवा के बाद अब अपने देश की स्थिर सम्पत्ति, भूमि को लीजिय। इ देश की सारी भूमि पर खेती नहीं होती। इसके कुछ हिस्सों में बड़े-छोटे शह और गांव बसे हुए हैं। थोड़ी धरती ऐसी है जो खेती के काम में नहीं ला जा सकती। फिर भी अनुमान लगाया गया है कि हमारी ज़मीन का १/७ हिस्स खाली पड़ा है। उसपर कुछ न कुछ पैदा हो सकता है।

प्रकृति ने ही हम लोगों का बहुत बड़ा काम कर दिया है। लगभग १ करोड़ एकड़ ज़मीन पैदावार के योग्य है। यह हम लोगों की खेती के योग् ज़मीन का १/६ हिस्सा है। प्रकृति ने इस हिस्से को घने जंगलों से भर दिय है और हम लोगों को बने बनाये जंगल मिल गये हैं। एक अंग्रेज़ इन्जीनिय ने हिसाब लगाया है कि हमारे जंगल दस करोड़ टन लकड़ी दे सकते हैं। औ इससे इन में कोई विशेष कमी नहीं हो सकती।

शेष सभी आवश्यक वस्तुएँ हम कहीं न कहीं पैदा कर सकते हैं। मैंने कहा, "हम पैदा कर सकते हैं" क्योंकि अब तक हम पैदा कर नहीं रहे हैं। आगे चल कर हम देखेंगे कि इस देश में हम कितनी अधिक वस्तुएँ पैदा कर सकते हैं। मगर आज की हालत में भी हमारे देश की ज़मीन कुछ कम पैदा नहीं करती। आइये! अब हम उन वस्तुओं पर ध्यान दें जो यहाँ बहुतायत से पैदा होती हैं।

गेहूं
रूस
सं. रा. अ.
कैनडा
हिन्दुस्तान
फ्रांस
आस्ट्रेलिया
इटली
जर्मनी
तुर्की
जापान
मिश्र
चावल
दुनियाँ
एशिया
चीन
हिन्दुस्तान
जापान
बर्मा
१००
६६
३५
३६
६
६
चीनी
हिन्दुस्तान
क्यूबा
जावा
फ़ारमोसा
ब्रेज़ील
१८
१६
८२
तम्बाकू
सं. रा. अ.
हिन्दुस्तान
रूस
२८
२२
१२
७८
हिन्दुस्तान
२२
रुई
सं. रा. अ.
हिन्दुस्तान
रूस
४१
१५
चीन
ब्रेज़ील
मिश्र
८५

चाय

चीन हिन्दुस्तान लंका

४६ २३ १२

डच पूर्वीय भारत जापान

६ ६

७७
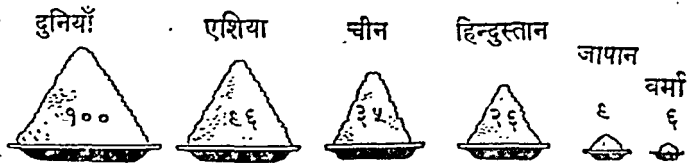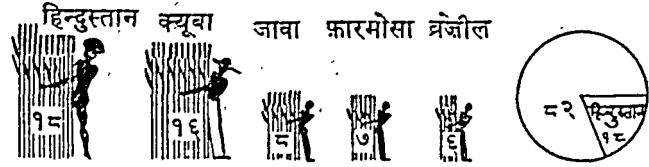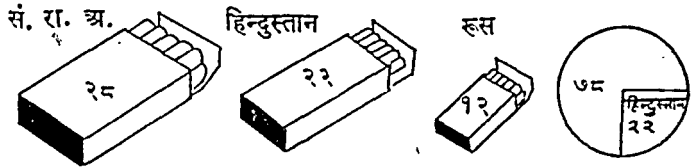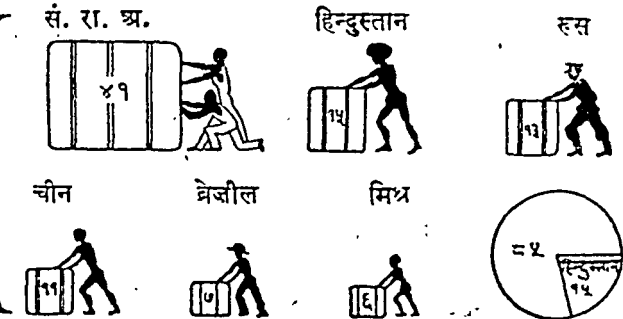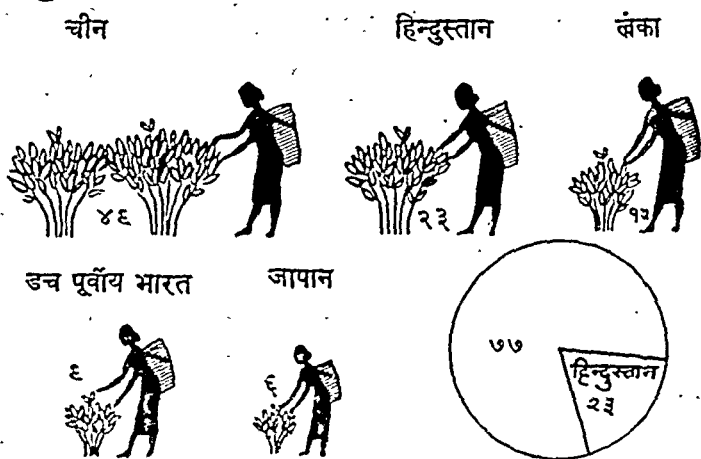
हिन्दुस्तान २३

ये चित्र आपको साफ बताते हैं कि हिन्दुस्तान हमारी दैनिक आवश्यकताओं को कितना पैदा करता है। आप देखेंगे कि हिन्दुस्तान बहुत तादाद में हमारे खाने के लिए गेहूँ, चावल और चीनी, पीने के लिए चाय और हमारे बड़े बूढ़ों के लिए तम्बाकू और कपड़ों के लिए रुई पैदा करता है। अगर आप सारी संसार की पैदावार को १०० मानें तो चित्र में दिये हुए अंक हर देश का हिस्सा बतलाते हैं।
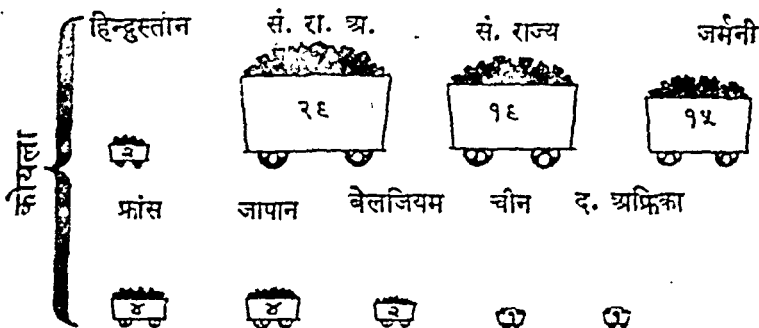
अब तक हम लोग सूर्य की किरणों का आनन्द लेते रहे, बादलों के साथ सैर करते रहे, हवा के साथ उड़े और धरती पर चले हैं। अब आइये हम अपनी ज़मीनों के अन्दर छिपे कोष की ओर दृष्टिपात करें। अभी तक हमें अपने देश के सभी खनिज पदार्थ का पता नहीं-इन्हें पृथ्वी से बाहर निकालना तो दूर रहा। हम जानते हैं कि हमारे पास काफी कोयला है। लेकिन इतना नहीं जितना ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका, और साम्यवादी रूस जैसे भाग्यशाली देशों में है। हम लोग साल में २ करोड़ ८० लाख टन कोयला निकालते हैं, यद्यपि हमारे पास कोयला कुल ६००० करोड़ टन है। पृष्ठ २० का चित्र बतलाता है कि भिन्न-भिन्न देशों में कितना कोयला उत्पन्न होता है।

हम लोग लोहे के मामले में काफ़ी अच्छे हैं। दुनियां के बहुत से योग्य व्यक्तियों का विश्वास है कि अमरिका और फ्रांस को छोड़ कर दुनियाँ का बड़े

कच्चा लोहा (धातुका कोष)

हिन्दुस्तान ३ | सं. रा. अमेरिका ४६ | रूस १६ | फ्रांस १३ | स्वीडेन ११

सं. राज्य ५ | जर्मनी ४ | नौरवे १ | आस्ट्रेलिया १
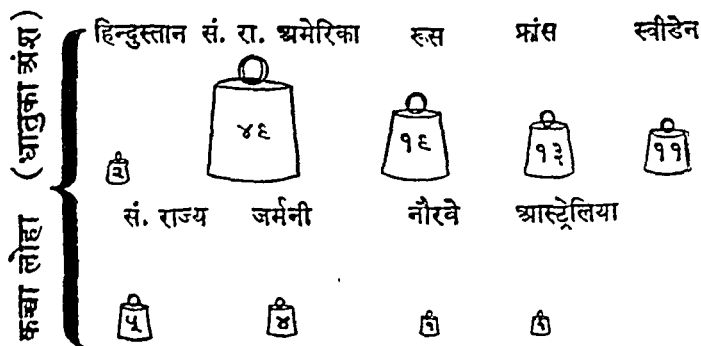
से बड़ा दूसरा लोहे का कोष यही है। केवल इतना ही नहीं, ऐसा विचार है कि गुण में यहाँ का लोहा दुनियाँ के सबसे अच्छे लोहे में हैं। लेकिन आप चित्र में देखेंगे कि लोहे का व्यवहार हम लोग कितना कम करते हैं।

साम्यवादी रूस को छोड़ कर, जिसने सन् १९२६ में ही १२ लाख ६ हजार टन मैंगनीज़ निकाला था, दुनियाँ में सबसे अधिक मैंगनीज़ यानी ४ लाख १४ हज़ार टन हिन्दुस्तान ने पैदा किया। संसार की पैदावार का क़रीब-क़रीब 1/6 हिस्सा है।

मैं तो अपने देश की प्राकृतिक सम्पत्ति का वर्णन यों ही करता जा सकता हूँ जब तक आपके सर में चक्कर न आने लगे, मगर मैं ऐसा नहीं करूँगा। आइए हम अपनी सूची यहीं समाप्त करें। मैं तो सिर्फ यही चाहता हूँ कि
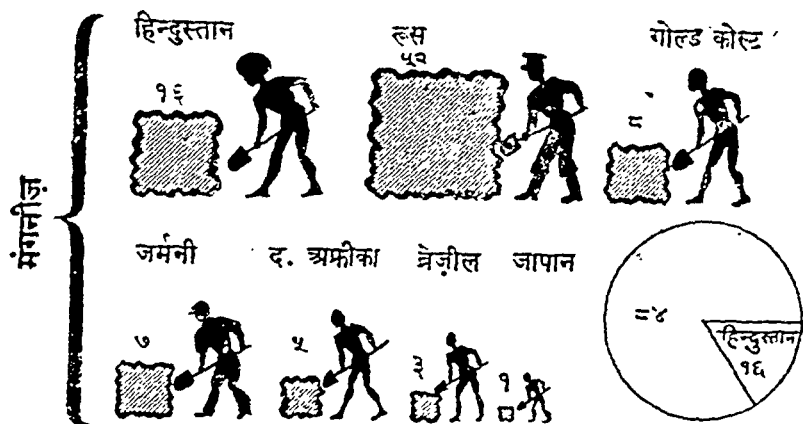
आप यह खूब समझ लें कि हिन्दुस्तान एक ऐसा देश है जिसके ऊपर आप और हम सभी भली भांति गर्व कर सकते हैं। मगर यह बात बिलकुल ही दूसरी है कि हिन्दुस्तान को भी हम पर और आप पर गर्व हो सकता है या नहीं। अच्छा जाने दीजिए, इस पर हम आगे चल कर विचार करेंगे। तब तक मैं एक प्रश्न की प्रतिक्षा कर रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि आप में से हर समझदार आदमी यह पूछने को अधीर होगा—"हां, मगर हमने इस अद्‌भुत देश की उन्नति के लिये क्या किया है? इस देश की विशाल सम्पत्ति का हमने क्या उपयोग किया है?" मैं आपके प्रश्नों का उत्तर देने की कोशिश करूँगा—पर इस परिच्छेद में नहीं।

३

एक पहेली

मेरे एक मित्र बम्बई के एक दफ्तर में काम करते हैं। उनका वेतन ५००) रु० महीने है। बहुत से लोगों का विचार है कि हिन्दुस्तान की हालत का विचार करते हुए किसी की आमदनी इससे अधिक न होनी चाहिए। लेकिन मेरी राय में अपनी जीविका के लिए ईमानदारी से काम करने वाले हर आदमी को कम से कम इतना अवश्य मिलना चाहिए। इसके बिना वह एक सभ्य मनुष्य की तरह नहीं रह सकता।

खैर, हमारे यह मित्र शहर के काफ़ी साफ़ और स्वास्थ्यकर हिस्से में एक चार कमरों वाले सजे सजाये फ्लैट में अपनी स्त्री और दो बच्चों के साथ रहते हैं। उनके बच्चे एक अच्छे से हाई स्कूल में पढ़ते हैं जहाँ लड़के और लड़कियां साथ पढ़ती हैं। वह और उनकी स्त्री एक पुस्तकालय के सदस्य हैं, जहाँ से उन्हें नई से नई पुस्तकें पढ़ने को मिलती रहती हैं। वे एक क्लब के भी सदस्य हैं। वहाँ वे टनिस और दूसरे खेल खेलते हैं। उनकी अपनी एक मोटर गाड़ी है जिसे वह स्वयं चलाते हैं। साल में एक बार या प्रायः इतने ही अरसे पर मेरे मित्र को काम से छुट्टी मिल जाती है और वे अपने परिवार के साथ इस बडे देश में कहीं न कहीं कुछ दिनों के लिए सैर करने जाते हैं।

मगर कुछ लोग—थोड़े ही लोग—हिन्दुस्तान में इस तरह रहते हैं। जिन्हें यह किताब पढ़ने का अवसर मिला है, मेरे विचार में, उन थोडे से लोगों में हैं जो भाग्य से इस श्रेणी में पैदा हुए हैं। मगर ज़रा सोचिए तो कि छोटे या बड़े शहरों में रहने वाले सभी लोग इसी तरह का जीवन क्यों न व्यतीत करें? मगर क्या उन्हें इसका अवसर मिलता है?

उन्हें ऐसा अवसर भला कहां मिलता है? आप हमें इन सारे ग़रीब

लोगों की याद दिलायेंगे। ठीक है। हमारे शहरों के अधिकतर रहनेवाले
ग़रीब हैं—बहुत ग़रीब हैं। वे शहर के गन्दे से गन्दे, अंधियारे, भयानक
हिस्सों में तंग हालत में रहते हैं। एक छोटे से अंधियारे, धुएं से भरे कमरे
में चार-पाँच, कभी-कभी दस-दस आदमी सोते हैं और कम से कम खाते हैं।
उनके बच्चों को पढ़ने लिखने और कुछ हिसाब लगा लेने से अधिक शिक्षा
नहीं मिल पाती और यह भी वे स्कूल छोड़ते ही चट-पट भूल जाते हैं। हमारे
देश के साधारण लोगों की अवस्था भयानक है। हमारे शहरों की मिलों और
कारख़ानों में काम करने वाले मज़दूर, जिन्हें हम शहर में रहने वाले बहुत ही
ग़रीब समझते हैं, महीने में १५) रु० से ५०) रु० तक पैदा कर लेते हैं और
इसी के सहारे वह अपने पूरे परिवार का पालन करते हैं। यह क्या कम
भयानक है। आपका क्या विचार है? अगर आपको अकेले इतने पर
जीवनयापन करना हो तो बड़ी परेशानी होगी। मगर एक मज़दूर की आमदनी
हमारे उन करोड़ों देशवासियों के मुक़ाबिले, जो कि गाँवों में रहते हैं और खेती
करते हैं, हमारे भोजन के लिये अन्न और कपड़ों के लिए रुई पैदा करते हैं,
राजसी है।

हिंदुस्तान के लोग एक समय भी भर पेट खाना नहीं खा पाते—उस
माने में जिस माने में कि खाने का प्रयोग इँगलिस्तान, अमेरिका या आस्ट्रेलिया
में होता है—यह हमने इतना सुना कि बड़े होते-होते हमें इस बात को विचार
करके कोई दुःख नहीं होता। फिर भी इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।
यह एक कठोर सत्य है। विश्वविद्यालयों के विद्वान अध्यापकों ने अनुमान लगाया
है कि हमारे देश का साधारण किसान, एक स्त्री और तीन बच्चों के साथ,
२७) रु० महीने यानी क़रीब १) रु० रोज पर जीवनयापन करता है।

उनके दरिद्र घरों म गंदगी और भूख का ऐसा आतंक रहता है कि उनके
नन्हें बच्चे वर्ष भर के अन्दर ही मक्खियों की तरह मरने लगते हैं। इसी
दुःखद वस्तु को शिशु मृत्यु का बड़ा नाम दिया जाता है। इस चित्र से
मालूम होगा कि शिशु मृत्यु संख्या हिन्दुस्तान में स्वीडेन से चार गुना
अधिक है।

अच्छा बतलाइये आप कितने दिन जीने की आशा रखते हैं? "सत्तर या कम से कम, साठ वर्ष" तो आप कहेंगे ही। खैर, आशावादियों का क्या कहना है? मगर मुझे भय है कि आप सब स्कूल के लड़के या लड़कियाँ,
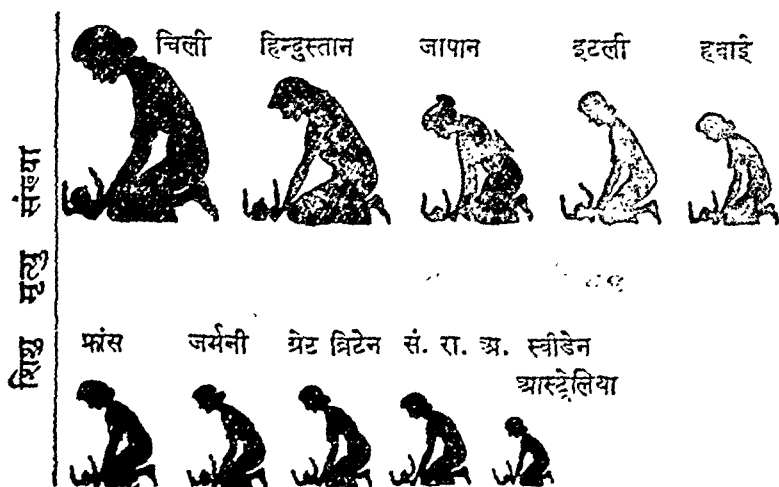
एक साधारण हिन्दुस्तानी होने की हैसियत से, अधिक से अधिक तीस वर्ष जीने की आशा कर सकते हैं! यह बात आपको अच्छी नहीं लगती। क्यों, ठीक है न? मगर ज़रा इस बात का तो विचार कीजिये कि अगर आप अपने जीवन का पहला साल पार कर चुके हैं आप भाग्यशाली हैं।

उदाहरण के लिये, अगर आपके घर में कोई बच्चा, भाई या बहिन, पैदा हो—देखिये! अपने बाप या माँ से इसे न कहियेगा, इसे सुन कर उन्हें दुःख होगा, बड़ों का यही हाल है—तो यह कहते दुःख होता है कि वह बच्चा, २७ वर्ष की उम्र में इस संसार से कूच कर जायगा।

इस चित्र में आप सभी राष्ट्रों को जीवनपथ पर साथ साथ चलते देख रहे हैं। उस फ्रांसीसी को देखिये वह ६० वर्ष की उमर तक किस शान से बढ़ता चला जा रहा है। सत्तर वर्ष के पास पहुँचते-पहुँचते भी वह न्यूज़ीलैण्ड का

रहनेवाला अपनी छड़ी घुमाये जा रहा है। मगर दुःख की बात है कि तीस वर्ष पूरा करते करते ही यह हिन्दुस्तानी थक कर गिरा जा रहा है।

ऐसा क्यों होता है ? हमारे उस दफ्तरवाले मित्र की तरह ही, उतने ही अरसे तक सभी हिन्दुस्तानी क्यों नहीं जी पाते और संसार की सभी अच्छी वस्तुएँ उसी तरह उन्हें भी क्यों नहीं मिलती ? क्या वे उतनी मेहनत नहीं करते ? जरूर करते हैं। उनमें से कितने तो कठिण से कठिन और दुःखदाई से दुःखदाई काम करते हैं, फिर भी गरीब के गरीब हैं। कठिनाई यह है कि हमारे आजकल के रहने के तरीके और व्यवस्था के कारण, सदा काम के अनुसार मजदूरी नहीं मिलती। लेकिन अगर ऐसा न भी होता, अगर हम सबको बराबर-बराबर मिलता तो भी हमारे विद्यालयों के अध्यापक कहते हैं कि हर आदमी पीछे हमारी आमदानी ६४) रु० ६ आने साल से बढ़कर, जितना कि आज कल देश के अधिकतर लोगों को मिलता है, सिर्फ ७८) रु० साल यानी ६ रुपये ८ आने महीना हो जायगी। आइये, हम पाँच लोगों के एक परिवार पर–अधिकांश परिवार ऐसे ही हैं—इसकी जांच करें। अगर इस देश की पैदावर को न्याय से बराबर बराबर बटवारा किया जाय, तो हमारे एक हिन्दुस्तानी महाशय को ३९०) रु० (७८×५) साल यानी ३२ रुपये ८ आने

महीने में मिलेंगे। इसके सहारे उन्हें अपने को, अपनी धर्मपत्नी को अपने सुपुत्र और दो सुपुत्रियों का पालन करना पडेगा। हिसाब लगाइयेगा, पाँच आदमियों के एक हिन्दुस्तानी परिवार के लिए एक रुपये से थोड़ा ही अधिक पड़ता है।

तो क्या हमारा देश इतना गरीब है कि इस देश के बच्चों को भूखो रहना पडे? क्या हमारी जमीन ऊसर है; मरुभूमि की तरह जल हीन है? या उससे बहुत थोड़ी उपज होती है और उसके अन्दर कुछ भी नहीं है? क्या प्रकृति ने हमारे साथ इतनी निर्दयता की है? "नहीं-नहीं"—आपके मुँह से निकलेगा। क्यों नहीं? आपने देखा है कि हमारा देश दुनियाँ के" भाग्यहीन प्रदेश में नहीं है। प्रकृति ने हिन्दुस्तान को बहुत बड़ा क्षेत्र दिया है। यहाँ की जलवायु सुखद तथा विभिन्न है। यहाँ की जमीन उपजाऊ है। पानी की यहाँ कमी नहीं है। इस देश की धरती के अन्दर मूल्यवान खनिज पदार्थ है और ऊपर घने जङ्गल हैं। मवेशियों से भी यह देश धनी है। और सबसे बढ़कर तो यहाँ की जनसंख्या मनुष्य जाति का पंचमांश है और ये बुद्धि तथा अन्य गुणों में किसी जाति से कम नहीं हैं और फिर इन्हें एक श्रेष्ठ सभ्यता तथा पुरातन सदाचार का सहारा रहा है। हिन्दुस्तान एक अजब उल्टी पुल्टी-सी चीज है—यहा परिपूर्णता के मध्य दरिद्रता फैली हुई है। यह एक बड़ी उलझन की चीज हैं। मगर आप तो जानते ही हैं कि हर उलझन का एक सुलझाव होता है।

इस पुस्तक में आपको बहुत से ऐसे सुलझाव मिलेंगे और आपके नये और तेज़ दिमाग, जिन्हें "क्रास वर्ड" प्रतियोगिता आदि की आदत हैं। अन्त में कह उठेंगे "मगर कितना सहल बात कही है!" सहल तो यह है अवश्य, चाहे बडे बडे राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री, पूँजीपति और पूरब के ज्ञानी जितना भी सर हिलायें, बात का बतंगड़ क्यों न करें और फिर भी किसी नतीजे पर न पहुँचे।
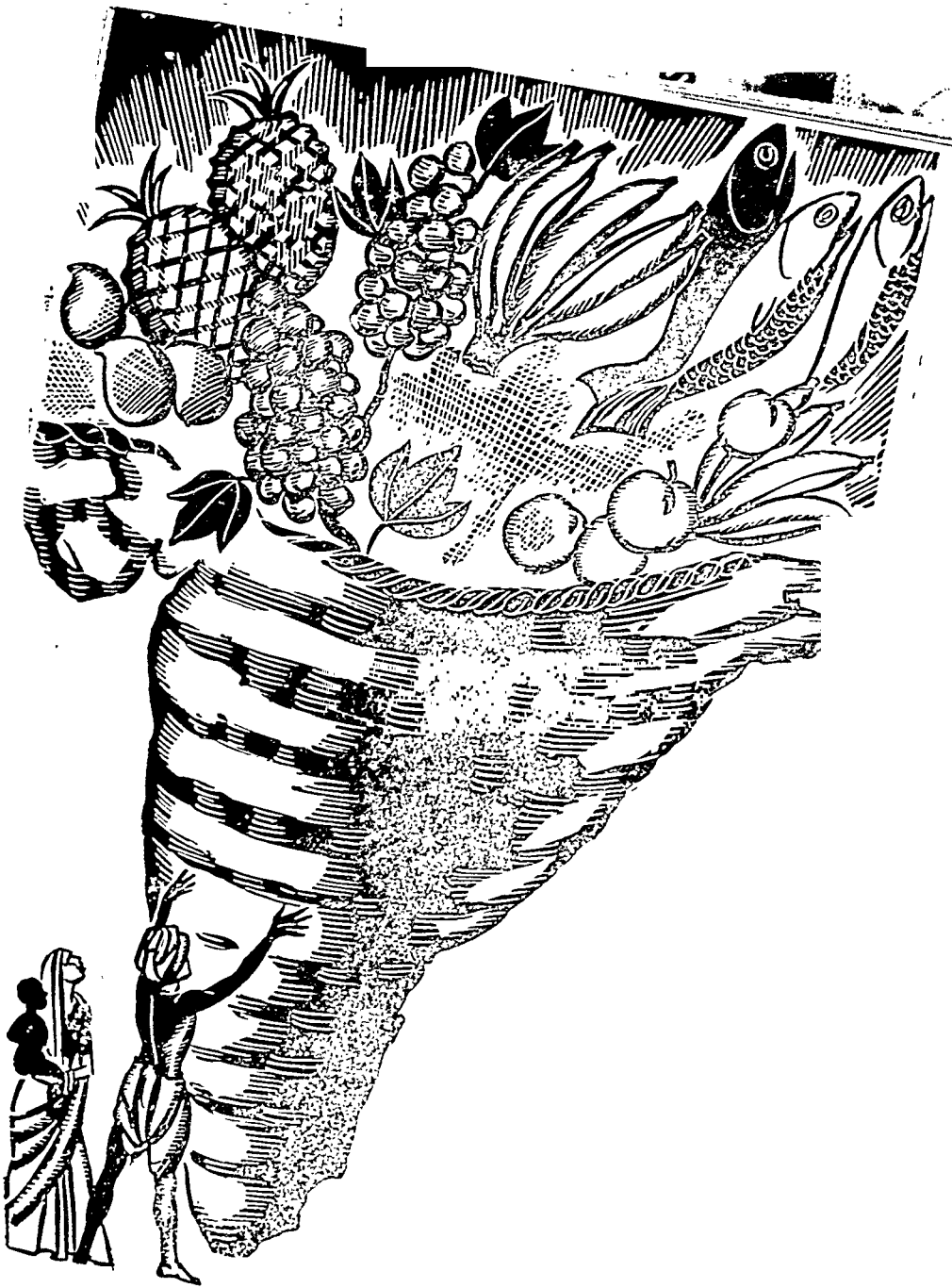
बात बहुत सीधी है। लेकिन यह तभी सम्भव है जब हिन्दुस्तान के सभी युवक और युवतियाँ इस समस्या को हल करने में लग जायँ। तभी तो

यह जरूर है कि आने वाले अध्याओं में उन्हें कुछ समयानुकूल सुलझाव बताये जायँ।
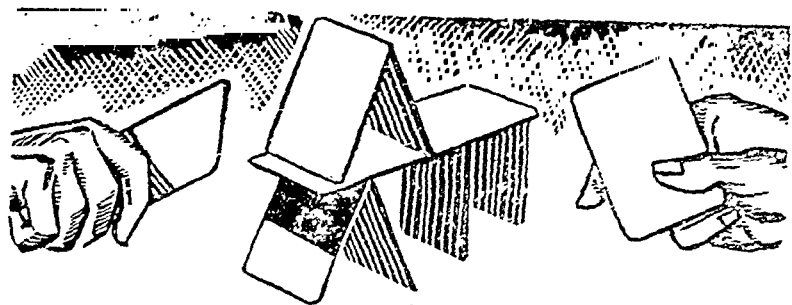
४

ताश का घर

अगर आपसे एक पक्के हिन्दुस्तानी का चित्र बनाने को कहा जाय तो आप क्या करेंगे? उसकी सूरत कैसी होगी? वह करता क्या होगा? आप क्या उसे सूट बूट पहना कर मेज़ के पास बैठा देंगे? या वह शेरवानी, चुस्त पायजमा, सर पर साफ़ा और पैरों में दिल्लीवाला जूता पहने सड़क से गुज़रता नज़र आयेगा? या आपका यह हिन्दुस्तानी बर्फ़ की तरह सफ़ेद खादी का कुरता और धोती और माथे पर गांधी टोपी पहने होगा?

खैर, मुझे तो चित्रकारी आती नहीं, लेकिन मैंने चित्रकार से अपने हिन्दुस्तानी का चित्र बनवाया है। इसके कमर तक का नंगा शरीर, बिना जूते के पैर, सर पर की हल्की सी पगडी और छोटी सी धोती देखिये। इसकी पूरी पोशाक यही है। और बस हाथ में एक हँसिया। मैं तो एक पक्के हिन्दुस्तानी को इसी रूप में देखता हूँ।

अगर आप नमूने के लिये दस हिन्दुस्तानियों को एक लाइन में खड़ा कर दें तो उनमें सात तो मेरे हिन्दुस्तानी की तरह होंगे यानी किसान या खेती करने वाले; आठवाँ एक मिल मज़दूर,

नवाँ एक दुकानदार या किरानी और दसवाँ एक व्यवसायी, ज़मींदार, वकील या डाक्टर होगा।
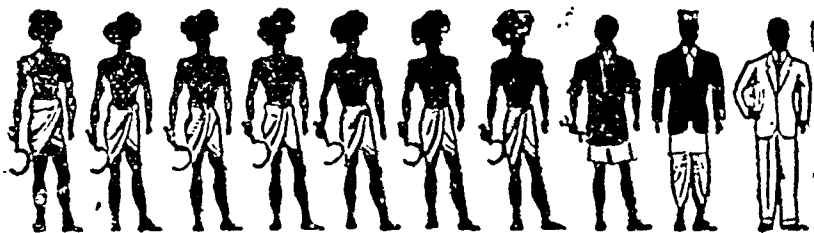
कम से कम, हर दसवें साल सरकार जो हमसे प्रश्न करती है, हमसे हमारे नाम, उम्र और काम के बारे में पूछताछ करती है, उससे तो हमें यही मालूम होता है। इस पूछताछ को जनगणना या मर्दुमशुमारी कहते हैं। १९४१ में यह जनगणना फिर की गई थी।

सबसे पहली बात जो हमें इस जनगणना से मालूम होती है वह यह है कि इस देश में किसी न किसी तरह १०० में ९० आदमी गाँवों में रहते हैं, और उनमें से ७२ खेती के द्वारा जीवनयापन करते हैं। हिन्दुस्तान के ७ लाख गाँवों में ऐसे करोड़ों लोग बसे हुए हैं।

यह ठीक है कि ये सबके सब, बालिग लोग भी, अपने हाथों से खेती नहीं करते। इसमें से कुछ तो बड़े ज़मींदार हैं, जिन्हें बाप दादों से ज़मीनें मिली हैं; उन्हें तो यह भी नहीं मालूम कि काम करना कहते किसे हैं। कुछ लोग उनके नौकर हैं। वे लगान वसूल करते हैं। कुछ तो छोटे ज़मींदार हैं जो थोड़ा काम स्वयं करते हैं और मदद के लिये मज़दूर भी रखते हैं। मगर गाँवों में रहने वाले अधिकतर लोग तो छोटे काश्तकार हैं, जिन्हें रैयत कहा जाता है और जो अपनी ज़मीन स्वयं जोतते हैं या वे खेतिहर मज़दूर हैं, जो किसी न किसी ज़मींदार के यहां मज़दूरी करते हैं। गांवों में खेतिहर मज़दूरों

की संख्या इधर बढ़ती गई है। सन् १९२१ में इस देश में १००० काश्तकारों के पीछे २९१ खेतिहर मजदूर होते थे। सन् १९३१ में इनकी संख्या ४०७ हो गयी थी। इस तरह हमारे किसानों में ३ में १ से ज्यादा बेज़मीन हैं; उन्हें तीन या चार आने रोज़ पर मज़दूरी करनी पड़ती है।

सभी देशों में इतने लोग खेती करके जीवन निर्वाह करते हों, ऐसी बात नहीं है। कितने ही देश ऐसे हैं जहां न तो इतने ज्यादा लोग गाँवों में रहते हैं और न इतने कम शहरों में। बहुत से देश अमेरिका की तरह हैं जहाँ १०० में २५ यानी एक चौथाई लोग ही खेती करते हैं। कुछ देश तो ऐसे भी हैं, और उनमेंसे इंगलिस्तान एक है, जहाँ १०० में १० ही खेती करते हैं और अधिकतर लोग छोटे बड़े शहरों में रहते हैं और कारखानों और दुकानों में काम करते हैं।

एक समय था—बहुत दिन नहीं हुए—जब इंगलिस्तान भी, हिन्दुस्तान की ही तरह सचमुच गाँवों का देश था। मगर पिछले २०० वर्षों के अन्दर अंग्रेज़ों ने बड़ी तेज़ी के साथ कारखाने बनाने और बड़े शहर स्थापित करने शुरू कर दिये, और जैसा कि आपकी इतिहास की पुस्तकों में बतलाया गया है, इंगलिस्तान में औद्योगिक क्रान्ति हुई। ऐसे तो यह नाम कुछ अजीब सा मालूम होता है क्योंकि क्रान्तियां चट-पट हुआ करती हैं मगर यह तो दो सौ वर्ष तक चलती रही और कुछ लोगों के विचार में अभी तक चल रही है।

क्या हिन्दुस्तान में भी ऐसा परिवर्तन होगा? क्या यहाँ के किसान भी शहरों में जायेंगे और कारखानों में काम करेंगे? यह प्रश्न बड़े महत्त्व का है। हम सबको इसका उत्तर देना होगा। लेकिन यह काम हम पुस्तक के अन्त के लिए छोड़ रखते हैं।

फिर भी इतना तो अवश्य मालूम होता है कि हिन्दुस्तान में, चाहे जैसे भी परिवर्तन या क्रांतियां हों, यह देश, गांवों का देश, किसानों का देश, ऐसा देश जहां के निवासी अपनी जीविका के लिये ज़मीन और उससे पैदा होने वाली चीज़ों पर निर्भर रहते हैं, बना रहेगा। कम से कम, जितना आगे हम देख सकते हैं उससे तो यही मालूम होता है।

असल बात तो यह है कि हमारी संख्या इतनी तेज़ी से बढ़ रही है कि अगर शहर और उद्योगधन्धे बहुत तेज़ी से पनपते गये तो भी अपनी फ़ाज़िल अबादी के लिये व्यवस्था कर लेने में बड़ी कठिनाई होगी। "हिन्दुस्तान के करोड़ों नर-नारी" (*India's Teeming Millions*) नाम की पुस्तक में बताया गया है कि सन् १९४६ तक हमारी आबादी ४२ करोड़ ५० लाख से कम नहीं होगी और इस लिये यद्यपि हमारे उद्योग धन्धे ऐसी तेज़ रफ्तार से बढ़ते रहे, जैसी कि हममें से उत्साही से उत्साही सोचता है, तो भी क़रीब-क़रीब उतने लोगों को जितने कि हिन्दुस्तान में आज हैं खेती के सहारे अपना जीवनयापन करना होगा।

तो फिर जो पहेली हमने पिछले अध्याय में पेश की थी अगर उसे सुलझाना है तो सबसे पहले हमें अपने देश की ज़मीन, उसपर काम करनेवालों और उसकी पैदावार से सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं का हल ढूंढ़ निकालना होगा।

हमने देख लिया कि हमारा यह देश कितना बड़ा है। इंगलिस्तान और वेल्स से चालीस गुना बड़ा है यह। लेकिन हम इस देश की सारी ज़मीन से चीज़ें नहीं पैदा कर सकते। इसके कुछ हिस्से पर तो छोटे-बड़े शहर बसे हुए हैं; गांवों में भी कुछ हिस्से आबाद हो गये हैं; कुछ हिस्से तो पहाड़ी और पथरीले हैं; कुछ नीचे और दलदल से भरे, और कुछ सूखे और बालू वाले हैं। लेकिन आपको याद होगा कि ऐसी ज़मीनों को छोड़कर भी हमारे देश की तीन चौथाई ज़मीन ऐसी है जिसपर हम कोई न कोई फसल पैदा कर सकते हैं।

ज़रा सोचिये तो यह भू-भाग कितना विस्तृत है। इंगलिस्तान उन देशों में से नहीं है जहां ज़मीन से अधिक से अधिक अनाज पैदा होता है। लेकिन अगर हम अपनी ज़मीन से उतना ही पैदा करें जितना कि अंग्रेज अपनी ज़मीन से पैदा करते हैं तो हर साल एक एकड़ जमीन से २२५) रु० की फसल पैदा कर लेंगे। कोई वजह नहीं कि हम ऐसा न कर सकें क्योंकि इंगलिस्तान के मुक़ाबिले हमारे देश के लोग न तो बुद्धि में कम हैं और न हमारे यहां की ज़मीन उपज में।

क्या आपको मालूम है कि इसके फलस्वरूप हमारे आपके लिये कितन रुपये बनते हैं? हिसाब लगाने पर हर आदमी के लिये साल में २७८) रु० यानी बारह आने रोज़ पड़ते हैं। इस तरह पांच आदमी के परिवार के लिये सिर्फ ज़मीन से ३ रु० १२ आ० रोज़ की आमदनी होगी। और उद्योग धन्धों, खनिज पदार्थों और जानवरों का प्रयोग करके जो लाभ होता है; उसके मूल्य के स्वरूप में थोड़ा और जोड़ दिया जा सकता है।

मगर आपको एक बात से आश्चर्य होगा। आप शायद भूले न होंगे कि पांच आदमियों के एक हिन्दुस्तानी परिवार की पूरी आमदनी एक रुपया रोज यानी ज़मीन से वे जितना पैदा कर सकते हैं उसकी एक चौथाई ही बताई गई है। तो फिर कहीं न कहीं बड़ी भारी ग़लती हुई है।

अगर हम इस में घुसकर देखें तो मालूम करेंगे कि हमारा यह राजमहल ताश के घर की तरह इसलिये गिरने लगता है कि जहाँ इंगलिस्तान में एक एकड़ ज़मीन से २२५) रु० की आमदनी होती है वहां हमारे देश में बहुत ही कम होती है।

हमारे देश की ज़मीन का तिहाई से लेकर एक चौथाई तक का हिस्सा बेकार पड़ा रहता है। जो हिस्सा काम में लाया भी जाता है उसम ५६) रु० फी एकड़ की आमदनी होती है जहां इंगलिस्तान में २२५) रु० की आमदनी होती है, यानी हमारी आमदनी इंगलिस्तान की आमदनी की एक चौथाई और जापान की आमदनी की एक तिहाई है।
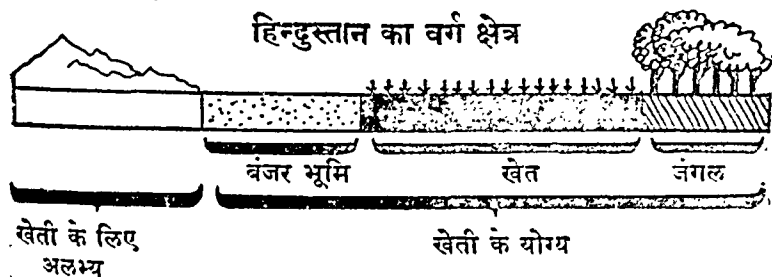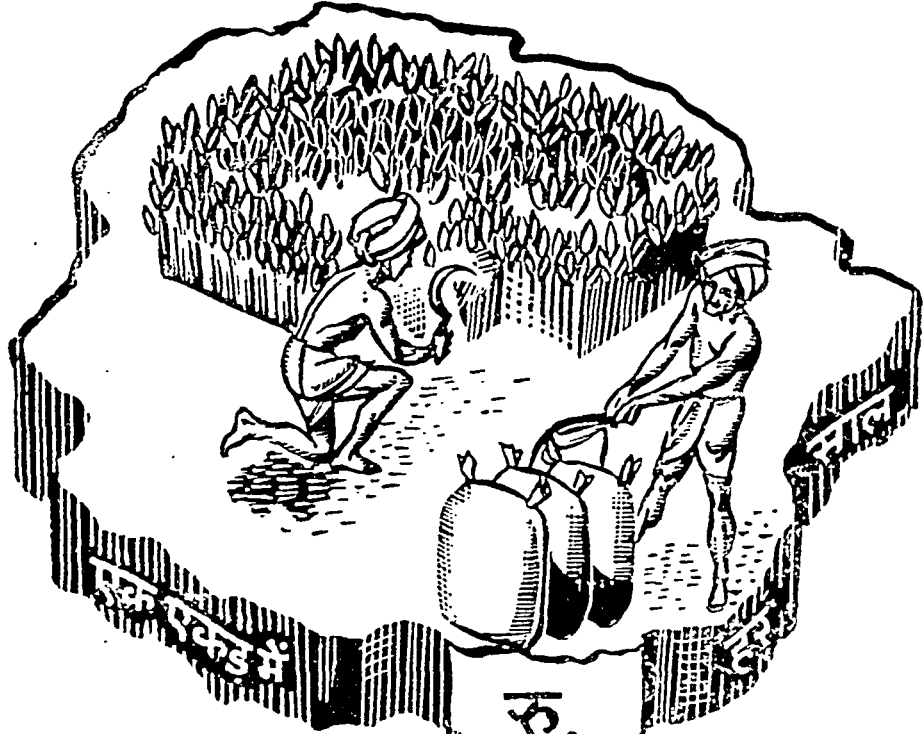
एक एकड़ में
रु.
२२५)
३-१२) रु.
रोज़

अनाज का उदाहरण अच्छा सा है। इंगलिस्तान में एक एकड़ जमीन में साल में २००० पाउण्ड अनाज पैदा होता है। हिन्दुस्तान में केवल ६९० पाउण्ड। या, जो आपको बहुत पसन्द है, ईख को ही ले लीजिये। जावा में एक एकड़ में ४० टन ईख पैदा होती है मगर हिन्दुस्तान में १० ही टन। रुई हमारे देश की व्यापार की फसल है यानी ऐसी फसल जिसे हम खाते नहीं। हम लोग एक एकड़ में ९८ पाउण्ड ही रुई पैदा करते हैं। लेकिन अमेरिका २०० पाउण्ड और मिश्र, इससे भी अधिक, ४५० पाउण्ड फी एकड़ पैदा करता है।

तो क्या हमने समृद्धि का चित्र खींचकर और आपकी आशाएँ बढ़ा कर कोई बड़ी गलती की? सच पूछिये तो मुझे इसका कोई खेद नहीं। अगर हमारे देश की जमीन इंगलिस्तान के हरे और सुहावने देश से खराब होती—या हमारे देश के लोग मूर्ख और जंगली होते तो बात दूसरी थी। मगर सचाई से तो यह कोसों दूर है। तो फिर हम फी एकड़ जमीन से २२५) रुपये कीमत की फसल क्यों नहीं पैदा करते? मैं कहता हूँ—हम कर सकते हैं और हमें करना चाहिये।
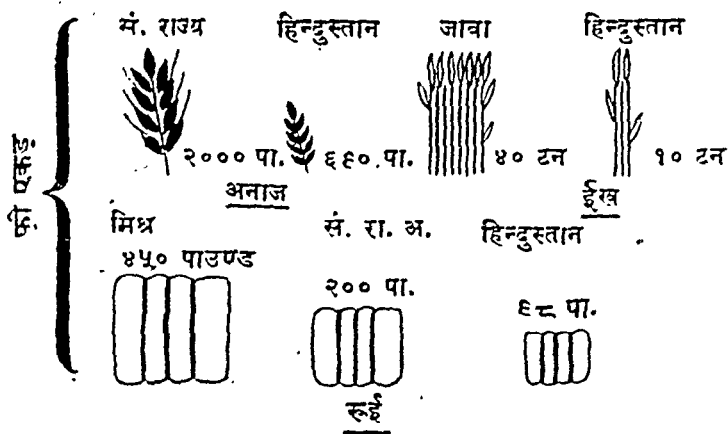
ऐसी हालत में मेरी राय है कि हमें यह काम शुरू कर देने चाहिये या, चूंकि हम किताब के पन्नों में ये काम नहीं कर सकते, इसलिए हमें करने का रास्ता ढूँढ निकालना चाहिये। हमें उन बातों का पता लगाना चाहिए जो अपने देश की ज़मीन का पूरा-पूरा प्रयोग करने से हमें रोकती हैं। वहां पर ज़रा परेशानी होती है। कुछ पता नहीं लगता कि कहां से शुरू करें। जहां भी शुरू कीजिये आप यह देखेंगे कि हिंदुस्तान में खेती का सिलसिला बिलकुल ही बिगड़ा हुआ है।

किसानों को ही लीजिये। ये भूखे, अनपढ़, अज्ञानी, वर्ष का एक तिहाई हिस्सा बेकारी में बिताते हैं। मवेशियों की उससे भी बुरी हालत है। ये और भी अधिक भूखे, बुरी तरह रक्खे और इस्तेमाल किये जाते हैं। जमीन की बात क्या कहूं? जमीन तो बहुत ही छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट दी गई हैं। खेती के सामान वही पुराने ज़माने के हैं; वही पुराने सामान, जो हज़ारों वर्ष पहले, अशोक या बुद्ध के काल में इस्तेमाल किये जाते थे। खेतों में प्राय: खाद नहीं पड़ती और इस तरह उसे उपजाऊ बनानेवाले बहुमूल्य पदार्थ इसमें नष्ट हो जाते हैं। नदी किनारेवाली जमीन बह जाती है। दूसरी ज़मीनें प्राय: सूखी, पानी के लिये तरसती रहती हैं। जँगलों में अब वह पेड़ों और हरियाली का पुराना जमघट नहीं दीख पड़ता।

आप पूँछेंगे—"आखिर हमारी यह बुरी हालत कैसे हो गई?" आप यह भी कहेंगे—"आपने तो कहा था कि हम लोग बुद्धि में किसी से कम नहीं।" मेरा विचार है कि इन बातों के उत्तर के लिये आपको अपनी इतिहास की पुस्तकों की मदद लेनी पड़ेगी। यहां तो हम, पीछे की बातें नहीं, आनेवाली बातों को देखने की कोशिस कर रहे हैं। इसलिए हमें जिस प्रश्न का हल ढूंढ़ निकालना है वह तो यह है—आखिर हम इस दुर्गति से कैसे निकलेंगे? इसमें कोई शक नहीं कि हमारी आज की हालत पलट सकती है और काफी तेज़ी से पलट सकती है। सच तो यह है कि लोग अपनी विपत्तियों के लिये दूसरों को दोषी ठहराना अधिक पसन्द करते हैं। पंजाब

की एक बड़ी अच्छी और मशहूर कहावत है—"जमादार की बेअक्ली और परमेश्वर का कसूर।" प्रकृति ने हमारे साथ कोई निर्दयता नहीं कि है; जो कुछ हुआ सब हमारा ही किया हैं। अगर आपको विश्वास न होता हो कि हम कितने बड़े बेवकूफ़ बने रहे हैं तो मैं आपको बतलाता हूँ।

५

पृथ्वी के रत्न

बाइबिल में श्रेष्ठ व्यक्तियों को 'पृथ्वी का नमक' (the salt of the earth) कहा गया है। अँग्रेजी शब्द नमक (salt) का व्यवहार उत्तमतम अर्थात् अधिकाधिक मूल्य का भाव प्रगट करने के लिये किया गया है। मगर आप तो प्रतिवाद करेंगे कि पृथ्वी में नमक कहां है? हम लोग अपने लिये नमक तो समुद्र से लेते हैं।

हाँ, यह सच है कि जो नमक हम और आप खाने के लिये प्रयोग करते हैं वह समुद्र के जल में पाये जानेवाले नमक से निकाला जाता है। मगर यह तो केवल एक प्रकार का नमक है। नमक की कई और किस्में हैं और इनमें से कुछ ज़मीन में पायी जाती हैं। ज़मीन में पाये जानेवाले नमकों में चार के नाम ये हैं—नाइट्रोजन, पोटासियम, फ़ॉसफोरस और चूना। इनका नाम जो कुछ भी हो, उसे लेकर क्या करना है? हमें मतलब है इनके काम से।

हमने पिछले अध्यायों में देखा है कि ज़मीन से चीजें पैदा करने में सूर्य, पानी, हवा और ज़मीन सभी का हाथ होता है। मगर ज़मीन में वह कौनसी चीज़ है जो फ़सल पैदा करने में मदद करती है? यही पृथ्वी के नमक। जब किसी ज़मीन में ये नमक यथेष्ट परिमाण और मात्रा में पाये जाते हैं तो चीज़ तेज़ रफ्तार से पैदा होती हैं और हम उस ज़मीन को उपजाऊ कहते हैं। जब ये नमक या इनमें से कुछ बिलकुल ही नहीं होते तो हम उस ज़मीन को ऊसर कहते हैं।

सभी अच्छी चीजों की तरह, इन नमकों का भण्डार भी परिमित है। वे थोड़े परिमाण में ही पाये जाते हैं और जैसे-जैसे ज़मीन से पैदावार निकलती जाती है ये समाप्त होते जाते हैं। उदाहरण के लिए, एक एकड़ ज़मीन में से साल भर में एक फ़सल २० पाउण्ड नाइट्रोजन समाप्त कर जाती है। इस तरह जमीन से पौधों या फ़सल की शकल में जितना नमक निकल जाता है जमीन में उतना ही कम नमक रह जाता है। और ज़मीन में नमक जितनाही कम होता जाता है उतनी ही उसकी उपज कम होती जाती है। इस उदाहरण से क्रमगत ह्रास के सिद्धांत (the Law of Diminishing Returns) का पता लगता है।

इस बीसवीं शताब्दी में ज़मीन से अभी तक हम लोग कुछ भी क्यों कर पैदा कर लेते हैं? आपको तो यही बात परेशान कर रही होगी। अब तक दुनियाँ की सारी ज़मीन ऊसर हो जानी चाहिए थी और हम सब भूखों मरते नजर आने चाहिए थे! और ऐसा सोचना कोई बड़ी गलत बात भी नहीं है। अगर एक बात नहीं की गई होती, अगर एक न एक रूप में मनुष्यों ने धरती से निकाले गये नमकों को फिर उसमें वापिस करते जाने की व्यवस्था न कर ली होती तो कुछ इसी तरह की बात हुई होती। फ़सल की शकल में निकाले गये नमकों की जगह धरती में राख, हड्डियों, गोबर और चूने के रूप में ये ही निमक मिलाकर उन्होंने यह आवश्यकता पूरी की है। ऐसी चीज़ों को खाद या उपज बढ़ानेवाली चीजें कहते हैं। इन नमकों की मात्रा घटने न पाये इसका एक उपाय यह भी है कि खेतों में लोग फ़सल-बदल कर बोते रहें। चूँकि एक फ़सल कोई एक नमक सर्फ करती है, इस कारण कोई भी नमक बिलकुल ही समाप्त नहीं हो जाता। इस तरीके को " फ़सल का हेर फेर " कहते हैं और यह हिन्दुस्तान में सैकड़ों वर्षों से काम में लाया जा रहा है। यूरोपियनों ने तो बहुत दिनों बाद इसका मूल्य समझा।

अगर आप किसी गाँव में गये हैं या गाँव में होकर गुजरे हैं (अगर आप अभी तक नहीं गये हैं तो हो आइये, जल्दी कीजिये!) तो वहाँ आपने झोंपड़ियों की दीवारों पर चिपके हुए गोइठे या उपलियाँ देखी हैं? और आप

ने कभी अपनेसे यह सवाल किया है कि इनका क्या हाल होता है ? अच्छा, तो सुनिये। गोबर का कुछ हिस्सा बहुत महीन और हल्का होने के कारण
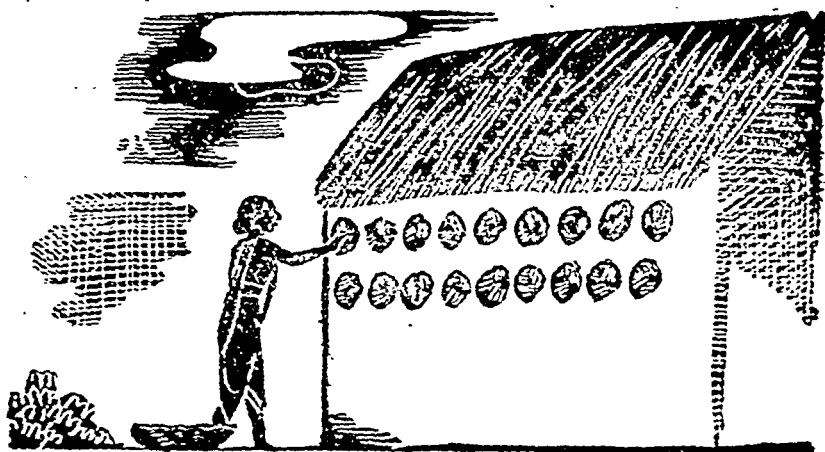
तेज़ हवा में उड़ जाता है। थोड़ा गोबर तो गाँववालों की झोपड़ियों की दीवारों और सहन की लिपाई करने में लग जाता हैं। अधिकांश तो लकड़ी की जगह इस्तेमाल किया जाता हैं यानी किसान के भोजन बनाने के काम में या जाडे में उसे गरम रखने के लिए जो आग जलाई जाती है उसमें जलकर भस्म हो जाता हैं।

मगर आप तो यह पूछने को परेशान होंगे कि भला इससे और धरती के नमक से क्या सम्बन्ध हैं ? सिर्फ यही कि गोबर में इनमें से कई नमक होते हैं और यह अच्छी से अच्छी खादों में है। प्रकृति ने इस तरह हमें बहुत सी ऐसी चीजें दी हैं जो ज़मीन के काम आती हैं। खेतों के मवेशी कई प्रकार से हमारी सेवा करते हैं। हमें खाद पहुँचाना उनके मामूली कामों में नहीं है।

फिर भी इसका हम उपयोग क्या करते हैं ? इसे अग्नि को समर्पित कर देते हैं और भस्म कर डालते हैं। हाँ, एक बात और याद आई। हम लोग मूँगफली की खली को और हड्डियों को, जो बड़ी अच्छी खाद हैं, दूसरे देशों को बेचे देते हैं और इसका विचार नहीं करते कि इनकी हमें स्वयं आवश्यकता

है। क्या आप यह सोच सकते हैं कि लाखों लोग ऐसी मूर्खता करते होंगे?

अच्छा आइये हम इन मूर्ख किसानों में से किसी से-मान लीजिये कि उसका नाम राम है—पूछें कि वह गोबर को जमीन में न डाल कर जला क्यों डालता है। वह कहता है--"अरे! उससे तो हम आग जलाते हैं।"

आप प्रतिवाद करते हैं--हां, मगर उसे फसल पैदा करने में इस्तेमाल करना तो अधिक लाभदायक है?" तो राम कहता है, "होगा, मगर, हम खाना किस तरह बनायेंगे?"

आप कहते हैं--"अरे, हम तो गैस पर खाना बनाते हैं!"

तो राम अपना सिर हिला देता है। गैस क्या चीज है उसने आज तक जाना ही नहीं और न सुना ही।

आप कहते हैं--'अरे भाई! कोयला और लकड़ी तो है।"

"उसमें बहुत पैसे लगेंगे" राम कह उठता है। "गोबर के लिए तो मुझे कुछ देना नहीं होता।"

राम की गँजी खोपड़ी में वह बात कैसी घुसाई जाय, आपको इसकी परेशानी हो रही है। यकायक आपके मस्तिष्क में एक विचार आता है और एक सुजान की हँसी आपके चेहरे पर खिल उठती है।

आप उससे पूछते हैं—"तुम्हारे पास पांच रुपये का नोट है?" राम उदास होकर कहता है, "अभी तो मेरे पास नहीं है मगर जब में अपनी पैदावार बेचने जाऊंगा तब मेरे पास जरूर होगा।"

"अच्छा बताओ, क्या तुम आग जलाने के लिये नोट उसमें डाल दोगे?"

"भला, ऐसा मैं क्यों करने लगा! कैसी उटपटांग बात आप कहते हैं?"

और राम आपकी बेवकूफी पर खिल-खिला कर हस पड़ता है।

फिर आप उससे पूछते हैं—"मगर यह उटपटांग क्यों है?"

१३७४ पा. अनाज

२१७४ पा. पुआल

एक एकड़

१

४ टन गोबर

+

३५५६ पा. अनाज

४७७६ पा. पुआल

एक एकड़

२

+ ४ टन गोबर

२
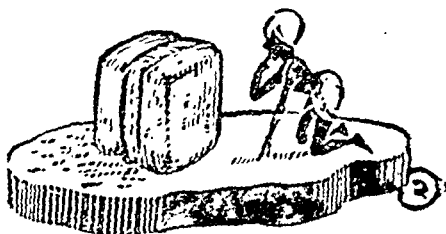
१ हंड्रेडवेट नाइट्रेट
१ हंड्रेडवेट अच्छा फोसफेट
१ हंड्रेडवेट केनिट

३
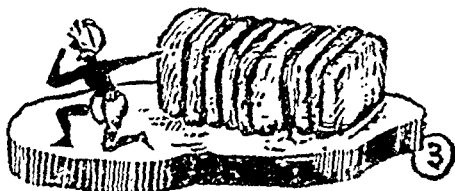
+ २ हंड्रेडवेट मूंगफली की उपली
२ हंड्रेडवेट अच्छा फ़ासफेट
२ हंड्रेडवेट केनिट

४
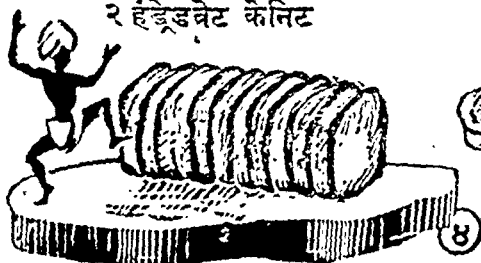
राम कहता है, "क्योंकि मैं पांच रुपये से बहुत सी चीजें ख़रीद सकता हूँ।" "ठीक, ठीक" अपनी जीत समझते हुए आप कह उठते हैं। "मगर क्या तुम यह नहीं देखते कि ठीक उसी तरह चलने के बदले, गोबर का बहुत अच्छा उपयोग हो सकता है। तुम यह नहीं समझ पाते कि अगर तुम गोबर को ज़मीन में डाल दो तो तुम्हारी फ़सल दुगनी-तिगुनी हो जायगी और तुम्हारे पास इतने पांच रुपये के नोट हो जायेंगे कि उनसे तुम अपनी आवश्यकता भर के लिए लकड़ी और कितनी और वस्तुएँ खरीद सकोगे।"

"भाई, यह तो ठीक है," राम कहता है, "मगर मुझे यह तो बताओ कि जब तक हम खेत में खाद डाल रहे हैं, फ़सल बढ़ रही है और पांच रुपये के नोट आनेवाले हैं तब तक घर में चूल्हा चक्की कैसे चले?"

अच्छा अब इसे यहीं छोड़िये। राम को तुरन्त उत्तर देना सम्भव नहीं है। आइये हम खेत और खाज के बारे में कुछ जानकारी हासिल कर लें जिसमें हम आगे चलकर इस मसले को हल कर सकें।

सबसे पहली बात हमारे जानने की तो यह है कि गोबर में बहुत तरह के नमक हैं। मगर कुछ ऐसे नमकों की भी धरती को आवश्यकता है जो गोबर में नहीं पाये जाते। दूसरे शब्दों में, गोबर ऐसी खाद नहीं है कि सिर्फ इसी से काम चल जाय। विश्वास नहीं होता? ठीक उस आदमी की सी हालत है जो चिड़ियाखाने में जिराफ़ को देखकर कहा उठा, "नहीं नहीं, ऐसा कोई जानवर नहीं होता।" जिराफ़ अफ्रिका में पाया जानेवाला एक जानवर है। जिसके दोनों अगले पाँव पिछले पाँवों से बहुत बड़े होते हैं; कुछ अजीब सी चीज़ लगती है।

गोबर में पोटाश, नाइट्रेट, चूना और कई दूसरी काम की चीज़ होती हैं मगर उसमें फ़ॉसफ़ोरस नहीं होता। आप जानते हैं क्यों? क्योंकि सारा का सारा फ़ॉसफ़ोरस
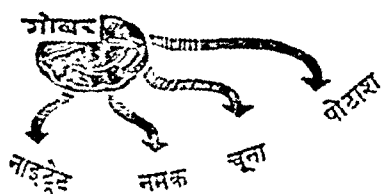
दूध में खिंच कर चला जाता है। और हम उसे पी जाते हैं। लेकिन अगर अलगसे फ़ासफ़ोरस ज़मीन में नहीं डाला जाय तो गायों के चारे में फ़ासफ़ोरस नहीं होगा और फिर हमारे दूध से भी वह लापता हो जायगा। तो हमने यह देख लिया कि गोबर के साथ फ़ासफ़ोरस और कुछ दूसरी चीजें भी धरती में पहुँचायी जानी चाहिये।

तरह-तरह की खाद प्रयोग करने से क्या नतीजे निकलते हैं यह जानने के लिये कितने ही प्रयोग किये गये हैं। ज़मीन को उपजाऊ बनाने में खाद का क्या हिस्सा होता है यह बताने के लिए हम इनमें से एक या दो का यहाँ वर्णन करेंगे।

एक एकड़ ज़मीन में, जिसमें कोई खाद नहीं दी जाती थी, १२७४ पाउण्ड अनाज और २१७४ पाउण्ड पुआल पैदा होता था। ५ टन से कुछ कम गोबर देने के बाद उसमें ३५५६ पाऊण्ड अनाज और ४०७९ पाउण्ड पुआल पैदा हुआ। बड़ी मार्के की बात है न? मगर इससे भी मार्के की बातें हुईं। जब गोबर के बदले हड्डियाँ और साल्टपीटर नाम की चीज़ डाली गयी तो और अधिक पैदावार यानी ४३८९ पाउण्ड अनाज और ६१७८ पाउण्ड पुआल हुआ। इस तरह उसी एक एकड़ जमीन से पहले से तिगुनी पैदावार हुई।

एक एकड़ जमीन में जिसमें रूई लगाई गई थी, फल और भी मार्के के हुए। खाद डाले बिना उसमें ५० पाउण्ड रूई पैदा होती थी। ४ टन गोबर डालने पर उसमें ८० पाउण्ड रूई पैदा हुई। २ हंड्रडवेट नाइट्रेट सोडा और उतना ही उत्तम फ़ासफ़ेट और केनिट डालने पर, उसमें १५० पाउण्ड रूई पैदा हुई। तब उसमें २ हंड्रडवेट मूंगफली की खली, अच्छा फ़ासफ़ेट और केनिट की खाद डाली गयी जिसके फलस्वरूप उसमें २०० पाउण्ड रूई पैदा हुई यानी पहले से चार गुना ज्यादा।

तो हमने यह देखा कि धातुओं को वैज्ञानिक ढंग से प्रयोग करने पर गोबर से अधिक लाभ होता है। मगर राम को यह जान लेना होगा कि उसकी ज़मीन को किन नमकों की आवश्यकता है। जिस तरह हम सभी एक ही खाना नहीं खा सकते उसी तरह सभी ज़मीनों की आवश्यकता एक सी नहीं होती।

मगर राम को यह कैसे मालूम हो कि उसकी ज़मीन को ठीक-ठीक क्या चाहिए। पहले उसके खेत की परीक्षा एक रसायनशास्त्री करके यह बताये कि उसमें किन नमकों की कमी है तो काम चले। मगर इसके माने यह है कि राम को रसायन-शास्त्री की फ़ीस देनी पड़ेगी।

अच्छा अगर राम ने किसी तरह यह फ़ीस दे दी और यह पता लगा भी लिया कि उसके खेत में गोबर के अलावा और क्या डालना चाहिये तो वह यह वस्तुएँ लायेगा कहां से? उसके पास इतने पैसे कहाँ है? बड़ी परेशानी की बात है न? क्योंकि अगर वह खाद डाल सके तो उसकी पैदावार से खाद तथा कितनी और वस्तुएँ खरीदने के लिए रुपये मिल सकते हैं। तो फिर यह बात साफ़ है कि राम को खाद उधार मिलनी चाहिये। उसे उधार पूंजी चाहिये। उसे खाद का कर्ज चाहिये जो की वह फ़सल पैदा कर लेने के बाद वापिस कर देगा। कोई ऐसा आदमी ढूंढ़ निकालना है जो यह कर्ज दे सके। दुःख की बात है कि आज यह काम कोई नहीं कर रहा है।

थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि हमने किसी को इस बात के लिए राज़ी कर लिया कि वह, नक़द दाम लिये बिना, राम को अपने खेत के लिए जो खाद चाहिये दे दे, फिर भी राम को गोबर के बदले आग जलाने के लिये कोई सामान चाहिये। हम उसे क्या दें? गाँवों में अभी गैस की व्यवस्था नहीं है। कोयला बहुत महँगा है। लेकीन लकड़ी? भला हमारे देश में लकड़ी की क्या कमी है? फिर इस गाँव में इतनी कम लकड़ी क्यों हैं? अब इस गिरह को खोल कर ही हम आगे बढ़ सकते हैं। हिन्दुस्तान की कृषियोग्य भूमि का पाँचवाँ हिस्सा घने जंगलों से भरा है ये जँगल हमारी अमूल्य सम्पत्ति हैं।

हिन्दुस्तान में १० करोड़ एकड़ जँगल हैं। इनसे साल में ८ करोड़ रुपयों की पैदावार होती है। हमारी जलवायु में पेड़ और पौधे इतनी तेज़ी से बढ़ते हैं कि साल में १० करोड़ टन लकड़ी ले लेने के बाद भी हमारे जँगलों में कोई कमी नहीं होती। फिर गोंड लोग यह जँगल गान क्यों न गायें—

वृक्ष लगाओ, वृक्ष लगाओ।
केला, आम, लगाओ इमली,
फल से झुक जायेगी डाली।
कचनार के फूल लगाओ।
बीच में तुलसी वृक्ष सजाओ।
जितना भी उनको सींचेंगे।
लेकिन वे मुरझा जायेंगे।
उपजे तरुगण जो हैं वन में,
एक मात्र आधार दैव के।
कभी नहीं तो वे मरते हैं।
वन के वृक्ष बढ़ा करते हैं।

कुछ लोगों का विचार है कि हमारे जँगल हिमालय पर हैं। यह गलत है। और यह हमारा सौभाग्य है क्यों कि ज़रा सोचिये तो कि उस हालत में लकड़ी मद्रास पहुँचाने में कितना व्यय लगता। नि:सन्देह, हिन्दुस्तान के सभी हिस्सों में बराबर बराबर जँगल नहीं पाये जाते। हिमालय पर बलूत, शाहबलूत, सनोबर, देवदार और बाँस के अच्छे अच्छे जँगल हैं मगर राजपूताना और सिन्ध में जँगल का नामोनिशान नहीं है। फिर भी यदि सारे हिन्दुस्तान को लीजिए तो ऐसी कोई जुती हुई जगह नहीं मिलेगी जो जँगल से, जहाँ से उसे लकड़ी मिल सके, १०० मील से अधिक दूरी पर हो। जहाँ पानी अधिक होता है वहाँ बारहमास ताड, बाँस, रबड़ आदि के पेड़ों के जँगल हैं। पहाड़ों की चोटियों के आसपास सनोबर के जँगल भरे पड़े हैं। नीचे के हिस्सों में सागवान और बबूल के पेड़ मिलते हैं।

यह सम्भव है कि कही कही जँगलों से गाँवों तक लकड़ी पहुँचाने के लिए रेलवे लाइन या सडक बनवानी पड़े। एक अँग्रेज इंजिनीयर का कहना है कि अगर लकड़ी की फ़सल २० सैकड़े बढ़ जाय तो, जितनी भी रेलवे लाइनें और सड़कें बनवानी पड़ें, सब का खर्च देकर भी कुछ बच जायगा। मगर

हम तो देख चुके हैं कि खाद देने पर, फ़सल २० प्रतिशतक ही नहीं २०० या ३०० प्रतिशतक बढ़ सकती है।

किन्तु क्या हमारे पास इतनी लकड़ी है कि वह गोबर की जगह पूरी पूरी तरह ले सके? थोड़ा हिसाब करने से पता लग जायगा। मोटे तौर से, हर गाँववाले के पीछे एक मवेशी पड़ता है। राम और पाँच जनों के परिवार के हिस्से में ५ जानवर पड़ते हैं जिनसे वह ८⅓ (५×८⅓) टन गोबर जमा करता है। इसके बदले जलावन तो २ टन सूखी लकड़ी से ही निकल सकता है।

हिन्दुस्तान के गाँवों में राम के परिवार की तरह ३ करोड़ ४० लाख परिवार हैं जिन्हें जलावन की आवश्यकता है। इसके माने यह हुए कि हमें ६ करोड़ ८० लाख टन सूखी लकड़ी चाहिये। क्या हमारे पास इतनी लकड़ी है? मेरे विचार से तो है। जैसा कि हम देख चुके हैं हम अपने जंगलों से २० करोड़ टन लकड़ी ले सकते हैं। फिर भी उनमें कोई फर्क नहीं आयेगा बल्कि ३ करोड़ बीस लाख टन लकड़ी बची रहेगी।

लेकिन इसके माने यह नहीं हैं कि हमारे जँगलों की अवस्था जैसी होनी चाहिये वैसी है। उनसे हमें जितना मिलना चाहिये नहीं मिलता। आज उनकी अवस्था अगर अच्छी है तो पहिले इससे भी अच्छी थी। पहले हिन्दुस्तान का अधिकतर हिस्सा घने जँगलों से भरा हुआ था। किन्तु अभाग्यवश हम उनका मूल्य जान भी न पाये थे कि हमारे जँगल बहुत कुछ नष्ट हो गये; या तो इसलिये कि लकड़ी की आवश्यकता थी या इसलिये कि खेती बारी या चरागाह के लिये ज़मीन की आवश्यकता थी।

इसका एक बुरा फल यह हुआ कि ज़मीन में खराबी पैदा होने लगी। यह बात तीन तरह से होती है। नदियाँ किनारे की मिट्टी काट कर ले जाती हैं और धीरे धीरे नदी किनारे की बहुतसी ज़मीन लापता हो जाती है। मूसलाधार वर्षा के कारण ऊपर की मिट्टी बह जाती है और अन्दर से पत्थर निकलने लग जाते हैं। तेज़ हवा ऊपर से सूखी मिट्टी उड़ा कर ले जाती है। हवा और पानी की इस क्रिया को विलयन (erosion) कहते हैं।

उत्तर पश्चिम हिन्दुस्तान के जंगल, जहाँ शहंशाह बाबर चार सौ वर्ष पहिले गेंडे का शिकार खेला करते थे, आज एक जलहीन तराई बन गये हैं। पिछले पृष्ठ के चित्र में आप यह वैषम्य देख सकते हैं।

विशेषकर संयुक्त प्रांत के कुछ हिस्सों में इस तरह ज़मीन की बहुत अधिक हानि हुई है। प्रसिद्ध यमुना नदी का तल, संयुक्त प्रान्त में, पिछले पाँच सौ वर्षों में पचास फीट नीचे गया है क्योंकि वर्षाऋतु में जल की तीव्र धारा पहाड़ से बहुत तेज़ी से उतरती है और यदि राह में जँगल होते और उनसे जल का प्रवाह बहुत रुक जाया करता तो यह सम्भव नहीं था।

इटावा जिला, वास्तव में दो सौ पचास एकड़ साल के हिसाब से तेज़ी के साथ मरुभूमि बनता जा रहा था। इसीलिये वहाँ नये जँगल लगाने–इसे ही हम वन-विस्तार कहते हैं—जमीन का कटना रोकने तथा जलावन और चारा पैदा करने की कोशिश की गई।

वहाँ पर बबूल, शीशम और सागवान की जाति के वृक्ष लगाये गये। और तीन ही वर्ष में वहाँ आदमी के कद से दुगुनी और चौगुनी ऊँची पैदावार लहलहाती नज़र आई।

इसमें फी एकड़ २७) रु० खर्च हुए। एक जँगल के लिये यह बहुत थोड़ा मूल्य है। आप इसका विचार कीजिये कि एक जँगल से आपको क्या क्या लाभ होते हैं। जँगल से आपको मकान के लिये लकड़ी ही नहीं बल्कि जलावन, चारा और कितने प्रकार के उद्योग धन्धों के लिये कच्चा माल (जैसे कि लाह, तारपीन, बांस, रबड़, धूप और चमड़ा तैयार करने के सामान) मिलता है। इसके अलावा धूप से बचाव होता है, गर्मी में ठंडक मिलती है, घोर वर्षा के पानी और नदियों की बाढ़ की रोक थाम करने, ज़मीन को हानि से बचाने और वर्षा की वृद्धि में भी सहायता मिलती है।

जँगल की पैदावार से बहुत तरह की वस्तुएं बनाई जा सकती हैं। हिन्दुस्तान में बहुत तरह की बीमारियाँ होती हैं और हमारे देशवासियों को दवाइयों की आवश्यकता है। जड़ी बूटियों से भरे हुए हमारे यह जँगल दवाइयों के भण्डार हैं।

एक एकड़

जलावन

चारा

लाह

रबड़
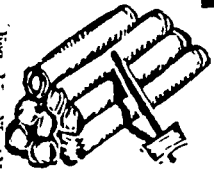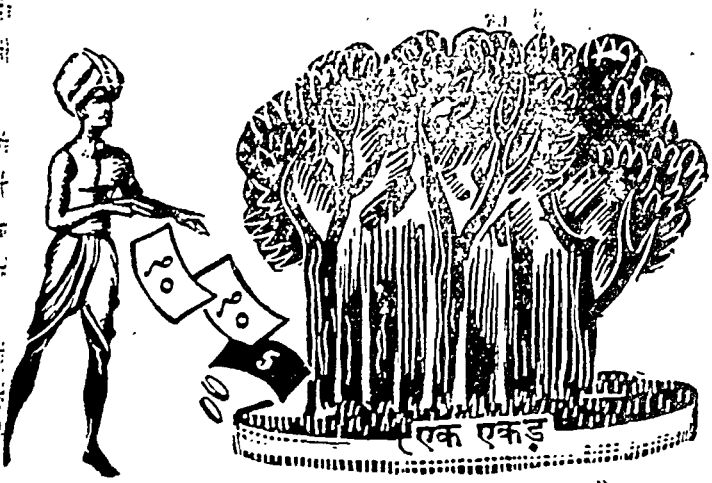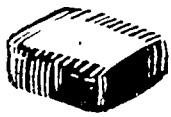
तारपीन का तेल
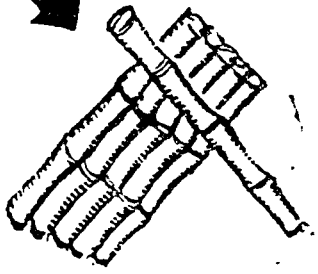
आश्रय

बिजली के सामान
जूतों के तल्ले
तिरपाल
डाक्टरी दस्ताने
बरसाती
टायर
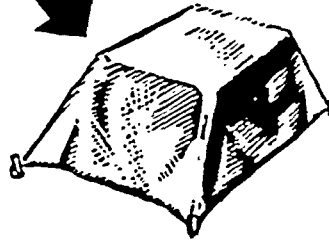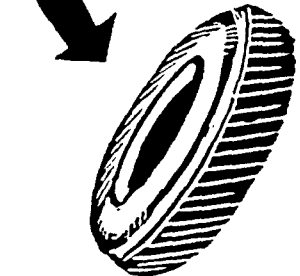
रबड़ को ही ले लीजिये। किसी समय में केवल पेन्सिल की लिखावट को मिटाने के लिये ही रबड़ की आवश्यकता होती थी। इसी कारण उसे रबड़ का नाम मिला (अंग्रेजी में 'रब' के माने मिटाना है)। मगर आज-आज तो उसके बिना हम बातचीत नहीं कर सकते और शायद अन्धार में पड़े रहें। रबड़ ही तो बिजली की धारा को बन्दी कर लेती है। उसके बिना तो बत्तियाँ गुल हो जायँ और टेलिफोनों का बजना बन्द हो जाय।

या कागज़ को लीजिये जिस पर कि यह पुस्तक छपी हुई है। आप बताइये यह कहाँ से आता है? उड़ीसा के जंगल से आता है। यह कागज़ उड़ीसा में पैदा हुए बाँस से बनाया जाता है।
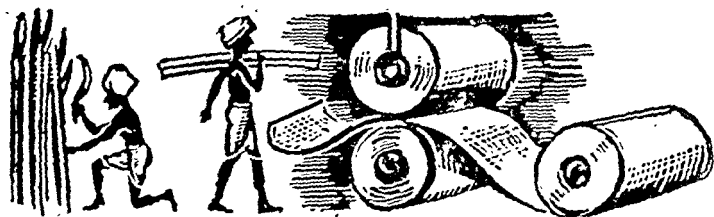
हमारे जँगल हमें क्या चिजें देते हैं यह आप एक छोटी सी रूसी कविता से कुछ २ समझ सकेंगे। यह एक बहुत ही मनोरंजक पुस्तक "मॉस्को का प्लैन" (Moscow Has A Plan) से ली गई है। मुझे विश्वास है कि आप यदि इस पुस्तक को पढ़े तो बड़ी प्रसन्नता प्राप्त करेंगे। रूसी जँगल-गान कुछ अगले पृष्ठ के चित्र में दिये हुए गाने सा है।

यदि हम अपने जँगलों की रक्षा करें और इनसे होनेवाले लाभों का विचार करके नये जँगल लगायें तो हम अपने राष्ट्र की सम्पति बहुत बढ़ा सकते हैं। यदि गाँव के पास कोई ज़मीन इसके लिये अलग कर दी जाय और पानी से उसे अच्छी तरह सींचा जाय तो तीन या चार वर्षों के अन्दर इस गाँव के पास एक अच्छा सा, ऊँचा सा कलम-बाग हो जायगा। इसमें से इतनी काफ़ी लकड़ी निकलेगी जो जलाये जानेवाले गोबर से कहीं अधिक होगी।

एक प्रोफेसर ने हिसाब लगाया है कि यदि देश के कुछ हिस्सों में, एक गाँव या कई गाँवों को मिलाकर जितनी ज़मीन होती है उसके तीसवें हिस्से भर ज़मीन इस काम के लिये अलग कर दी जाय और उसमें यूकलिप्टस के पेड़ लगाये जायँ तो उनकी आवश्यकताएँ पूरी हो जायँ।

मेरा विचार है कि हमने इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया है कि अब हम राम के पास वापस जाकर उसकी समस्या को हल करने की कोशिश कर सकते हैं।

सबसे पहली बात जो हम उसे करने को कहेंगे वह यह कि उसे अपने गाँव के लोगों को मिला कर, सभी को थोड़ी २ ज़मीन यानी अपने खेतों का तीसवाँ हिस्सा अलग कर देने और उसपर ये आवश्यक पेड़ लगाने को राज़ी करना चाहिये। मगर यह पेड़ इतने बड़े हो जायँ कि जलावन के लिये काफ़ी लकड़ी दे सकें, इसमें तो कम से कम तीन वर्ष लगेंगे।

तो क्या राम तब तक गोबर जलाता रहेगा? कभी नहीं। आवश्यकता इस बात की है की उसे इस बीच में रुपये मिल जायँ जिससे कि वह जलावन खरीद सके। मगर उसके पास तो बिल्कुल ही रुपये नहीं हैं। तो फिर कोई ऐसा आदमी ढूँढ़ निकालना होगा जो उसे तब तक रुपये उधार दे दे जब तक कि वह, खाद प्रयोग करके, पैदा किये गये फ़ाजिल फ़सल के द्वारा इसका मूल्य अदा नहीं कर देता। मेरा विचार है कि यह काम सरकार का है। मगर हमारी मुसिबत यह है कि इस देश की सरकार के पास इतने रुपये नहीं हैं कि वह राम को लकड़ी खरीदने के लिये रुपये दे सके। अगर राम एक सहयोग समिति का सदस्य होता तो वह शायद उसे दे देती। और अगर वह सौभाग्य से यह कर्ज पा गया तो वह शीघ्र ही अपनी ज़मीन की बहुत बढ़ी हुई फ़सल से यह कर्ज अदा कर देगा। और फिर तीन वर्ष समाप्त होते होते गाँव का कलम-बाग उसे और उसके पड़ोसियों को जितने भी जलावन की आवश्यकता होगी दे सकेगा।

ऐसी व्यवस्था में क्या उनकी अवस्था पहले से बहुत अच्छी न हो जायेगी? हां, मगर इसमें कई 'अगर' हैं। अगर उसमें और उसके पड़ोसियों

वन बोने से क्या मिलते हैं?
मुदृढ़ जहाजों की मस्तूलें,
सागर सैर किया करते हैं।
शहतीरें इन से बन जातीं,
बल्ले इन से बन जाते हैं।
सड़कों पर ये पुल रच देते,
नदिया जहां बहा करती हैं।
वन बोने से क्या पाते हैं?
हल्के हल्के छोटे डेने,
नभ में जो विचारा करते हैं।
अपने मतलब की जमीन और,
खिड़की हम इनसे पाते हैं।
टेबुल, कागज़ भी बनते हैं।
पुस्तक पढ़ने को मिलते हैं।
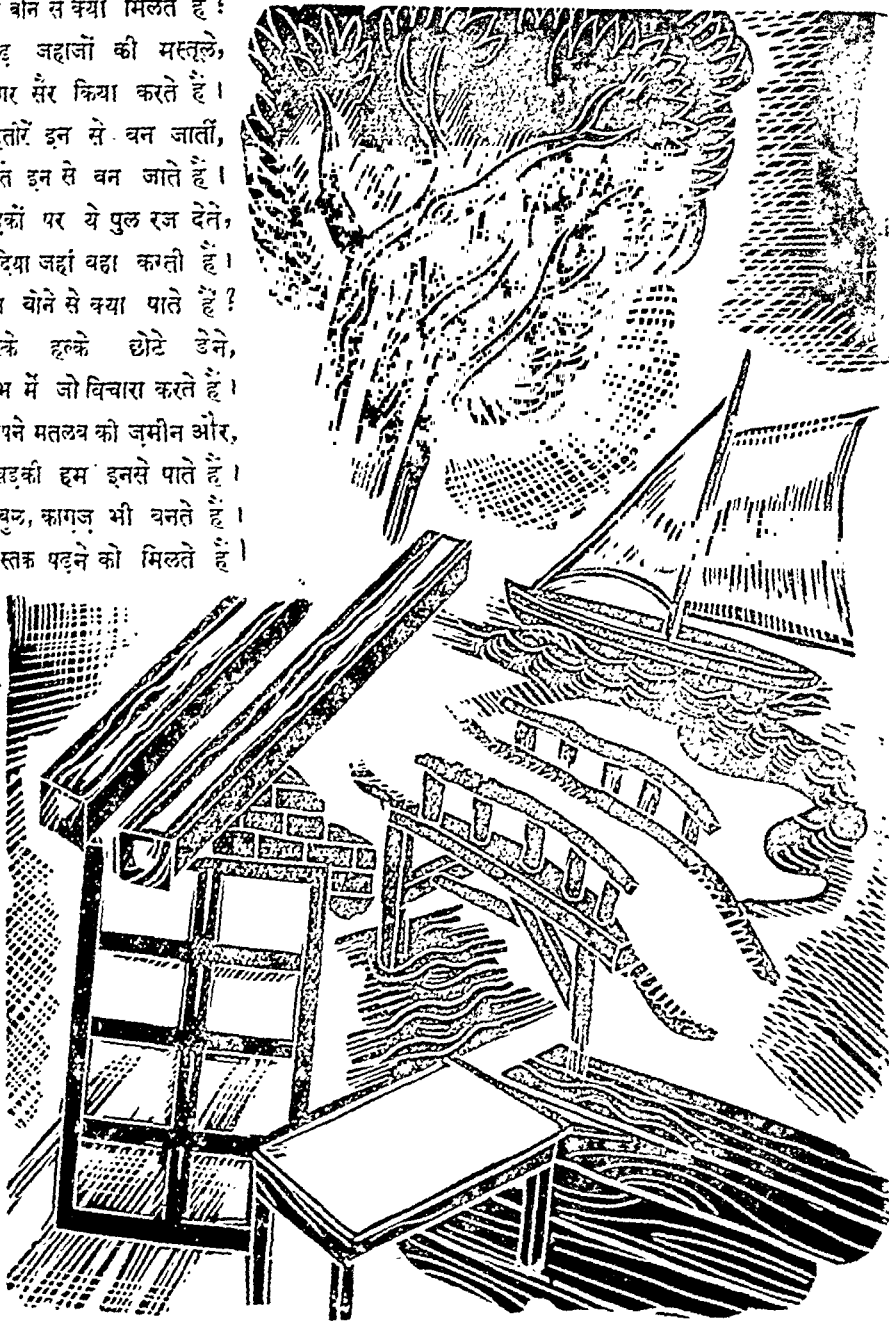
में इतनी बुद्धि है कि वे अपनी थोड़ी २ भूमि पेड़ लगाने के लिए अलग कर दें, अगर कोई उसको क़र्ज़ दे दे, और—सबसे बड़ा अगर—अगर उसपर
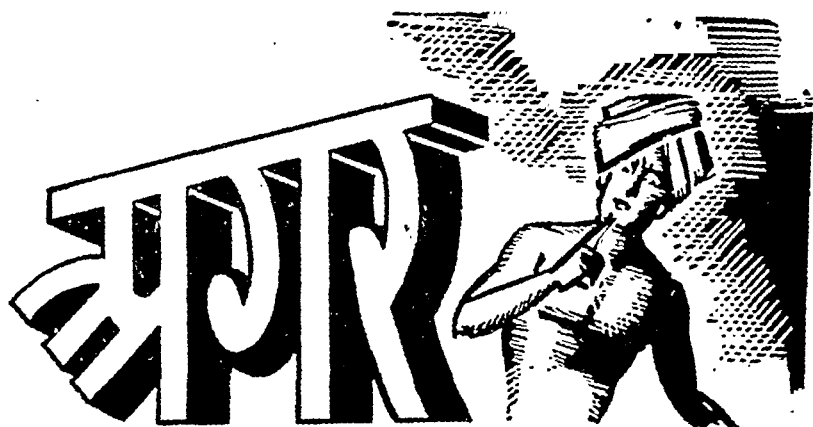
मौनसून की दया दृष्टि रहे और एक फ़सल के लिये अच्छी वर्षा हो जाये। क्योंकि ऐसी ज़मीन में खाद भर कर क्या होगा जो पानी के बिना इतनी सूख गयी हो कि उसमें कुछ पैदा ही नहीं हो सकता। राम के लिये हमारी सारी अच्छी से अच्छी योजनाएँ, "चूहों और आदमियों की अच्छी से अच्छी योजनाओं" की तरह, जैसा कि अंग्रेज़ कहा करते हैं, बेकार जायेंगी अगर—

६

कुछ अगर मगर

बादल पास हमारे आओ।
पुष्प सुसज्जित तेरा अंचल।
श्वेत और धूमिल तुम चंचल।
अपने श्रम के श्वेत कणों को अब हम पर बरसाओ।
सदा बन्द रहती आंखें तब।
लाओ अपने मित्रों को सब।

पानी बरसा, हम लोगों को अच्छा अन्न खिलाओ।
साँधे बादल, समरथ बादल!
आलस्यमय तुम प्यारे बादल।
मेरे आभूषण से तुम निज शिर पर छत्र धराओ।
घर में हल बेकार पड़े हैं।
ग्रीष्म दुखद, जन तड़प रहे हैं।
वर्षा, आओ, मधुकण लेकर, एक बार मुस्काओ।
बादल पास हमारे आओ।

क्या आपको ग्राम ललनाओं का यह गीत पसंद आया? यह जसीमुद्दीन की एक बंगला कविता से लिया गया है। इस सुन्दर कविता का विषय एक किसान युवक और ग्रामीण युवती का प्रेम है। इसकी पंक्तियों से ये सीधे सादे देहाती सजीव हो उठते हैं। और जैसा कि इस गीत से ही मालूम होता है, उन्हें सबसे बड़ी चिन्ता इसी वर्षा की होती है। कभी कभी तो गाँव के लोग इकट्ठे होकर वर्षा के लिए प्रार्थना करते हैं।

वर्षा पर इस प्रकार सर्वथा निर्भर होना तो हिन्दुस्तान की एक विशेष बात है। हमारे देशवासियों के जीवन पर इसका जो गहरा असर है वह दूसरे देशों के लोग नहीं समझ पाते। मगर सभी किसान वर्षा के महत्त्व को अच्छी तरह समझते हैं।

इसी लिये हमने पिछले अध्याय के अन्त में कहा था कि ज़मीन में खाद डालने से पैदावार तिगुनी हो जायेगी यदि मौनसून की वर्षा अच्छी हो।

हमने देखा कि हमारी ज़मीन को पानी पहुँचाने में मौनसून का कितना बड़ा हाथ होता है। इसके बिना धरती में कुछ उपज ही नहीं सकता। यह काम दो तरह से होता है। एक तो सारे देश में होनेवाली वर्षा के द्वारा और दूसरे उन नदियों के जल प्रवाह द्वारा जो पहाड़ों से निकल कर समतल भूमि पर होकर बहती हैं।

यह पहला काम बहुत ही आवश्यक है क्योंकि नदियाँ सारी की सारी ज़मीन को पानी नहीं पहुँचातीं, पहुँचा सकती भी नहीं। पहले तो इतनी नदियाँ

नहीं हैं और दूसरे कितने ही ऐसे बड़े बड़े हिस्से हैं जहाँ नदियाँ हैं ही नहीं। ऐसी अवस्था में बहुत सी जगहों में सूखी ज़मीन को बादल का पानी ही सींचता है। और जैसा कि हमने पहले कहा है, निस्सन्देह हिन्दुस्तान के कुछ ऐसे हिस्से हैं, ऊपरी सिन्ध की तरह, जहाँ प्रायः वर्षा होती ही नहीं।

मौनसून के वर्षा के साथ कठिनाई यह है की वह जहाँ होती भी है अनियमित रूप से होती है, उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता, बड़ा धोका हो जाता है। उसकी हालत उस खिलवाड़ी राक्षस की सी है जो कभी प्रसन्न तो कभी रुष्ट रहता है। कुछ पता नहीं लगता कि कब क्या होगा। एक साल बहुत पानी हो जाता है और दूसरे साल बहुत कम। एक साल गुजरात में मध्य प्रान्त से बहुत अधिक वर्षा हो जायगी तो दूसरे साल बिल्कुल उल्टा। एक साल वर्षा बहुत शीघ्र आरम्भ होगी और उतनी ही शीघ्र समाप्त हो जायगी। दूसरे साल देर करके आयेगी और देर तक जारी रहेगी। सब से बड़ी कठिनाई तो यह है कि सरकारी ऋतु-विशेषज्ञ भी, जो बराबर पता लगाते रहते हैं, पहले से यह नहीं बता सकते कि किसी भी साल मौनसून की क्या हालत रहेगी। यही कारण है कि किसान आकाश की ओर आँख लगाये चिन्ता में डूबा हुआ बैठा रहता है। हर साल, वह चाहे या न चाहे, उसे इस बड़े जुए में शामिल होना ही पड़ता है। मौसम के आख़ीर में या तो उसकी अवस्था बहुत ही अच्छी होती है या उतनी ही बुरी। इसके अलावा कुछ फ़सलें ऐसी हैं, जैसे कि चावल और ईख, जिनको इतनी अधिक और इतनी नियमित वर्षा की आवश्यकता होती है कि ये कुछ विशेष प्रदेशों में ही पैदा होती हैं। और फिर दूसरी फ़सल यानी जाड़े की फ़सल बराबर बहुत अधिक पानी चाहती है।

क्या हमारे देश के किसानों को बराबर इसी तरह प्रकृति के भरोसे रहना होगा? क्या इस दुःखद अनिश्चित अवस्था से उन्हें हम किसी तरह बचा नहीं सकते?

हाँ, बहुत कुछ किया जा सकता है। और कुछ किया भी गया है मगर अभी बहुत करना बाकी है। जहां खेतों के बीच हो कर या उनके पास से
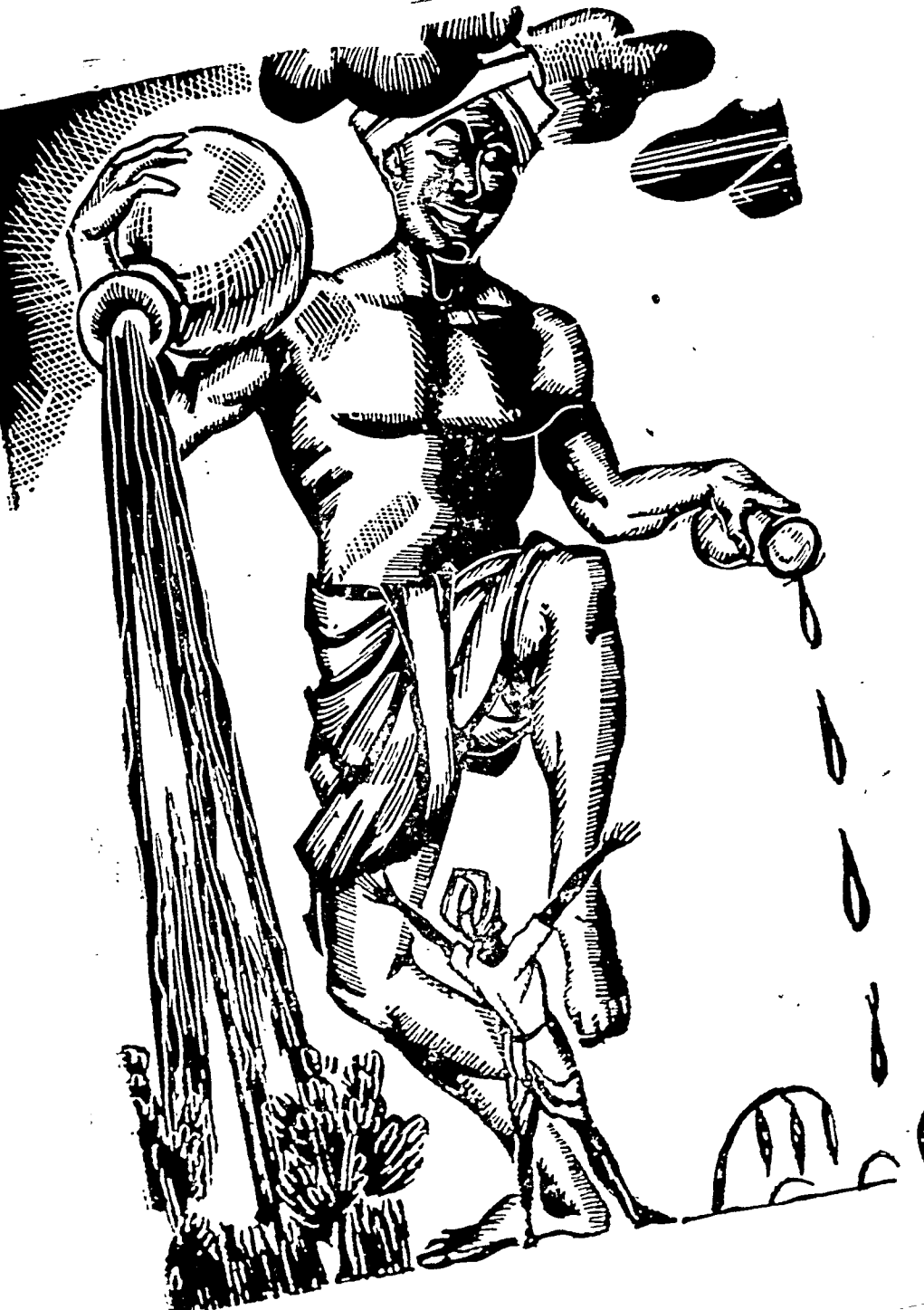
कोई नदी बहती है वहा तो नदी से पानी लेकर ज़मीन सींची जा सकती है। यह बहुत थोड़ी सी ज़मीन के लिए ही सम्भव है। बाकी ज़मीन के लिए तो नहरें बनवानी पड़ेगी। इनमें नदियों से जल पहुँचाया जाय। और इस तरह जिन हिस्सों में पानी की कमी हैं पानी पहुँचाया जाय। इसको ज़मीन की सिंचाई कहते हैं।

बहुत पुराने ज़माने से ही लोगों ने बड़े बड़े तालाबों में पानी जमा करने और कुएँ से ज़मीन के अन्दर का पानी निकालने की कोशिश की है। पिछले सौ वर्षों के अन्दर नहरों के द्वारा नदियों का फाजिल पानी इस्तेमाल करने की ओर बहुत कुछ किया गया है और आज हिन्दुस्तान के खेतों का पाँचवाँ हिस्सा किसी न किसी तरह सींचा जाता है।

सबसे पुरानी और सब से काम की सिंचाई कुए से होती है। इस तरह सींची जानेवाली ज़मीनों का हिस्सा एक चौथाई पड़ता है। हिन्दुस्तान में एक करोड़ ३५ लाख कुएँ हैं।

तालाब भी पुराने ज़माने की चीज़े हैं। मद्रास में इनका बहुत रिवाज है। वहाँ चालीस हजार तालाब है। मगर पंजाब और सिन्ध में तो ये नहीं
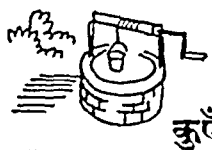
के बराबर हैं। जब साल भर में तीन इंच ही पानी होता हो तो अधिक जमा भी तो नहीं किया जा सकता।

सबसे अधिक सिंचाई नहरों से ही होती है। सब मिला कर नहरों की लम्बाई ७० हज़ार मील है। सन् १९३६-३७ में कुल ५ करोड़ २० लाख एकड़ ज़मीन सींची गई। इसमें २ करोड़ ८० लाख नहरों से सींची जाती थी, ६० लाख एकड़ तालाबों से, १ करोड़ २० लाख एकड़ कुओं से और ६० लाख और तरह से।

नहरों में पानी या तो नदियों से लाया जाता है, जैसा कि उत्तर में और मद्रास में होता है, या मॉनसून के दिनों में तराई में बाँध आदि बना कर झील सी तैयार करके, इन्हीं में जमा किये गये वर्षा के पानी से लाया जाता है। जिस हिस्से में पानी बहुत अधिक बरसता है और जहाँ की ज़मीन पहाड़ी है, जैसा कि बम्बई और मध्यप्रान्त म, वहाँ ऐसी व्यवस्था की जा सकती है।
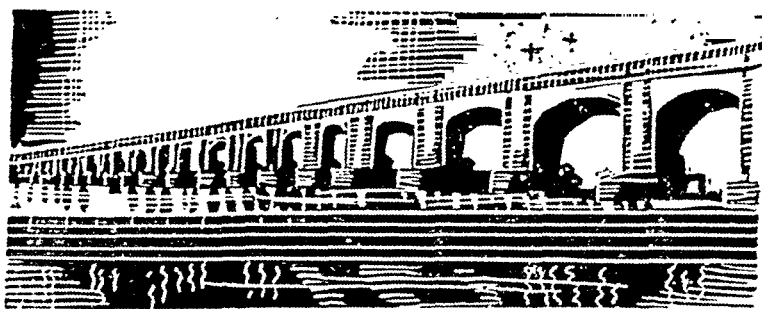
नदियों पर भी बाँध बनाए जा सकते हैं जैसे सिन्ध में सिन्धु नदी पर सक्कर बाँध बनाया गया है।

अधिकांश में सिंचाई की व्यवस्था से बहुत लाभ होता है। पहले से बहुत अच्छी फ़सल होने लगती है; किसान धीरे धीरे कर के रूप में सरकार को इसका रुपया अदा कर सकता है। मगर कहीं कहीं यह व्यवस्था केवल अकाल से बचने के लिए ऐसी जगहों में की गई है जहाँ वर्षा बहुत ही अनिश्चित

होती है जैसे कि दक्षिण में। इसे "संरक्षक" योजना कहते हैं यानी इस से लाभ की आशा नहीं करते। दूसरी तरह की योजना को "लाभदायक" कहते हैं।

देश के सभी हिस्सों को सिंचाई की व्यवस्था से समान लाभ नहीं हुआ है। जहाँ सिंध के जुते हुए हिस्से का ७३.७% और पंजाब का ४४.१% सींचा जाता है वहाँ बंगाल के भाग में ६.२% ही है, मध्य प्रान्त और बरार में ४.२% और बम्बई में तो सबसे कम, ३.९% है। यह ठीक है कि सिंध में बम्बई से अधिक सिंचाई की आवश्यकता है, फिर भी अभी कितना अधिक और करना है। हमें अभी और अधिक तालाब, कुएँ, और नहरें चाहियें, जब तक कि हमारे देश की सारी ज़मीन की सिंचाई की, किसी न किसी तरह व्यवस्था न हो जाय, चाहे उनके लिए पानी नदियों से लिया जाय या तराइयों में बनाये गये जलाशयों से। इसके लिए कुएँ खोदे जा सकते हैं और उनमें पम्प लगाये जा सकते हैं। जहाँ खेत बहुत छोटे-छोटे हैं वहाँ कई किसान मिलकर इसके लिए रुपये दे सकते हैं।

लेकिन ज़मीन में खाद अच्छी तरह डाली जाय और काफ़ी पानी भी दिया जाय तो भी कोई विशेष लाभ नहीं होगा यदि ज़मीन अच्छी तरह जोती नहीं जाती, अच्छा बीज नहीं बोया जाता और फ़सल सावधानी से काटी और सहेज कर रक्खी नहीं जाती।

सौ वर्ष पहले तक सारी दुनियाँ में खेती मवेशी या घोड़ों के सहारे हाथों से की जाती थी।

स्टीम एञ्जिन जब कारखानों में प्रयोग में आने लगे तब लोगों के मस्तिष्क में यह बात आई कि खेतों में जानवरों के बदले स्टीम या भाफ़ की शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। मशीन तेजी से काम करती है और इसे इतना खिलाना पिलाना नहीं पड़ता। इसलिए बोने, खेत जोतने, मिट्टी तोड़ने, काटने-छाँटने और रस, अन्न, और पानी निकालने के लिए तरह २ की मशीनें यूरोप के देशों में चल पड़ी हैं।

इसके बाद इन मशीनों को चलाने के लिये तेल का प्रयोग किया जाने लगा और आजकल बिजली का प्रयोग किया जाता है। एक मोटर ट्रेक्टरर (खेत
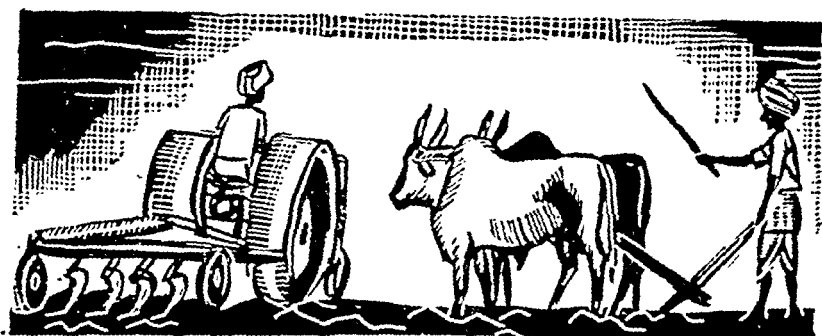
जोतने वाली मशीन) दिन भर में ५ एकड़ ज़मीन जोत सकता है मगर एक आदमी और एक घोड़ा तो मिल जुल कर एक ही एकड़ जोत सकते हैं। अमेरिका में अब लड़कियाँ दूध नहीं दुहती। यह काम बिजली की मशीनों से होता है। यही मशीनें मक्खन और क्रीम भी बनाती हैं, जिनमें मनुष्य का हाथ लगता ही नहीं। फल यह होता है कि ये वस्तुएँ बहुत ही स्वच्छ और स्वस्त होती हैं। स्वीडन में यह पता लगाने की कोशिश की जा रही है कि तार से ज़मीन के अन्दर बिजली से गर्मी पहुँचाकर फ़सल और भी तेजी से पैदा की जा सकती है या नहीं।

मगर क्या मशीनों और आविष्कारों के सहारे हम अपनी ज़मीन से पूरा २ लाभ उठाने की कोशिश कर रहे हैं? नहीं, दुःख तो इसी का है। हमारे किसान वही पुराना काठ का हल इस्तेमाल करते हैं—कोई कोई लोहे का भी काम में लाते हैं—वही पुराने यन्त्र और कार्य-प्रणाली काम में लाते हैं जो कि हज़ारों वर्ष पहिले प्रचलित थी। इसके कई कारण हैं। हमारे देशवासी बहुत ग़रीब हैं और मशीनों में बहुत रुपये लगते हैं। दूसरी तरफ़, हमारे गाँवों में १० करोड़ बेज़मीन मज़दूर हैं और मज़दूर सस्ते मिलते हैं। कोई अपनी मदद के लिये मशीन क्यों ख़रीदे जब काम करनेवाले इतने सस्ते मिलते हैं। इस तरह हमारे गाँवों की यह फ़ाज़िल आबादी अच्छे अच्छे यन्त्रों या सामान

के प्रयोग का रास्ता रोके खड़ी है। दूसरा कारण मूर्खता है। जहाँ बाकी दुनियाँ में कृषि में विज्ञान का पूरा उपयोग होता है वहाँ हमारे किसान यह जानते ही नहीं कि मोटर ट्रैक्टर की तरह की भी कोई चीज़ है। वे बीज की अच्छाई का विचार भी नहीं करते। वे पुराने यन्त्र और सामान प्रयोग करते हैं और अनाज को सावधानी से नहीं रखते; उसे बरबाद करते हैं।

हमारे गाँव के लोगों को केवल पढ़ाने लिखाने की ही आवश्यकता नहीं है, वे अपना काम ठिकाने से करें यह भी सिखाने की बड़ी आवश्यकता है। सरकार के कृषि-विभाग में ऐसे लोग हैं जो किसानों को समयानुसार सलाह दिया करते हैं। मगर इनकी संख्या बहुत कम है, इतनी कम है कि पंजाब में ९,००० खेतों की निगरानी एक आदमी करता है अगर यह आदमी सदा घूमता रहे तो कई वर्षों तक दुबारा किसी एक खेत को देखने नहीं जा सकता। मगर आवश्यक तो यह है कि खेतों से नित्यप्रति का सम्बन्ध हो। यह भी आवश्यक है कि मशीनों का उपयोग सिखलाने के लिये गाँवों में इंजीनीयरों को भेजा जाए। और ये मशीनें उन्हें कम से कम दाम पर मिलनी चाहियें। इसके माने यह होते हैं कि देश में बड़े २ कारखाने होने चाहियें जिनमें ये मशीनें और यन्त्र काफ़ी संख्या में बनाये जा सकें। फिर हमारी रेलों को इन्हें गाँवों में बहुत कम महसूल पर पहुँचाना चाहिये।

दूसरी बात जो हमारे किसानों को सिखाई जाय यह है कि वे अच्छी उन्नत जाति के बीज व्यवहार करें। अमेरिका में चावल की फ़सल प्रति एकड़ १,००० पाउण्ड से २,००० पाउण्ड केवल वैज्ञानिक तरीकों से पैदा किये गए बीजों के व्यवहार से बढ़ा दी गई। और तो और १९४० का वर्ष अफ़ग़ानिस्तान में नव-वर्षारम्भ दिवस सरकार द्वारा दिए गए अच्छे बीजों के बोने से मनाया गया था।

किसानों के खेती के सामान में पशु आते हैं। अधिकतर, खेत पीछे एक जोड़ा बैल और एक गाय हुआ करती हैं। यह भी सभी जगह नहीं। एक बार महात्मा गांधी उड़ीसा के गाँवों में पैदल दौरा कर रहे थे। उड़ीसा

हमारे देश के गरीब से गरीब हिस्सों में है। इस दौरे में, सौभाग्य से हम दिनों तक मैं भी उनके साथ था। इस समय में, मुझे याद है, हम लोग कितने ही गाँवों से गुज़रे जिनमें एक भी गाय नहीं थी और इस लिये दूध भी नहीं पाया जाता था। मुझे उन गाँवों के छोटे छोटे अभागे बच्चों पर तरस आया। वे बहुत ही छोटे थे।

ज़मीन के बाद किसानों की बहुमूल्य वस्तु उनके पशु हैं। आपने देखा ही है कि इनसे उन्हें बहुत तरह के लाभ होते हैं। बैल खेतों में हल चलाते हैं और बाज़ार को गाड़ी ले जाते और ले आते हैं। गायों से ही बछड़े होते हैं जिन्हें बेचकर उन्हें बहुत रुपया मिलते हैं। गायें दूध देती हैं और इनकी किसानों के बच्चों विशेष आवश्यकता है। और जैसा कि किसी ने ठीक ही कहा है—'शाकाहारी देश में दूध, मक्खन या घी न हो, इससे बड़ी मुसीबत भी कोई हो सकती है?' वास्तव में, इन पशुओं की सभी चीजें—चमड़े, दाँत, हड्डियाँ, सींग और खुर—किसी न किसी तरह दूसरी चीजें बनाने में प्रयोग की जाती हैं। और हाँ, गोबर को तो नहीं भूलना चाहिए। यही कारण है कि किसान अपने पशुओं से पृथक होना नहीं चाहता। तभी तो वह, उसका परिवार और उसके पशु प्रायः एक ही कोठरी में सोया करते हैं।

हम लोग अपने पशुओं की रखवाली तो करते हैं मगर उन्हें अच्छी तरह खिलाने पिलाने की चिन्ता नहीं करते। हमारे अधिकतर पशु भूखे रहते हैं। उनकी खाद्य वस्तु यानी चारा पैदा करने के लिए काफ़ी जमीन नहीं छोड़ी जाती। मौनसून के बाद नई घास होती है। तभी मवेशी जी भरकर खाते हैं। कभी कभी इतना खा जाते हैं कि अपच भी हो जाती है। मगर दिसम्बर के बाद से घास समाप्त होने लगती है। और

६८१ मवेशियोंमें

२६९ मर चुके

२८५
मरने मरने को

११७
बाहर भेज
दिये
गये

१०
बेंच दिये
गये

उस समय से लेकर जून तक पशुओं का जीवन दुःखमय हो जाता है । वे नंगे-सूखे खेतों में भटकते फिरते हैं और उनके शरीर में हड्डियाँ भर रह जाती हैं । अगर अकाल पड़ गया तब तो पशुओं का जीवन बड़ी दुखःदायी हो जाता है । मैंने एक दिन सुबह को समाचार पत्र में पढ़ा—

“ कराची के खरीद बिक्री अफसर थारपारकर ज़िले के अकाल के बारे में लिखते हैं कि इस ज़िले में कुल ६८१००० पशुओं में से करीब २६९००० मर चुके हैं, ११७००० पशुओं को ज़िले के बाहर भेज दिया गया है, १०००० पशुओं को ३) से १०) रु. लेकर बेच डाला गया है और बाकी २८५००० में से अधिकतर चारे की कमी के कारण मरने पर हैं । ”

पशुओं के लिये चारा पैदा करने में लोग उतनी भी परेशानी नहीं उठाते जितनी कि मनुष्यों के लिये । अगर ऐसी बात न होती तो जहाँ घास का एक तृण पैदा होता है वहाँ दो हो सकते थे । अगर हम ऐसा करें तो हमें जितने पशुओं की आवश्यकता है उने सबके लिये चारा जुट जाय । यह याद रहे कि मैंने यह नहीं कहा है कि कितने पशु हैं उन सबके लिये व्यवस्था हो जायगी ।

सारी दुनियाँ में कुल ५४ करोड़ पशु हैं और इसमें से १८ करोड़ हमारे देश में हैं । इसके माने यह होते हैं कि दुनियाँ के मवेशियों में एक तिहाई हमारे देश में हैं । यह बहुत अधिक है । मिश्र के लोगों के पास १०० एकड़ ज़मीन में २५ पशु पड़ते हैं । हालैंड में, जहाँ के रहनेवाले पशु-प्रेमी हैं और मक्खन और पनीर के शौकीन हैं, उतनी ही ज़मीन में ३८ पशु पड़ते हैं । मगर हमारे यहाँ उतने में ही ६७ पशु हो जाते हैं । आदमियों की तरह इस देश में पशु भी बहुत अधिक हैं । फिर आश्चर्य क्या कि हम उन सबके लिये चारा नहीं जुटा सकते ।

ऐसी हालत क्यों है ? इसी लिये कि हम लोग बड़े ही दयालु हैं । दूसरे देशों में लोग बेकार जानवरों को मार कर खा जाते हैं । हिन्दुस्तान में हिन्दू गोमांस नहीं खाते और हम लोग जहाँ तक हो सके जीव हत्या करना नहीं

हिन्दुस्तान
सं. रा. अ.
सं. सो. सो. प्र.
ब्राज़िल
जर्मनी
सं. राज्य
मवेशी
६६ २/३
हिन्दुस्तान
३३ १/३
दूध
८८
हिन्दुस्तान
१२
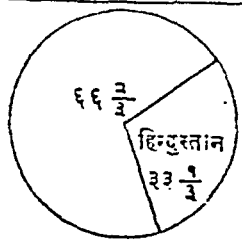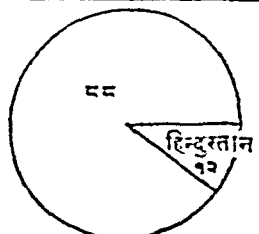
चाहते। मगर उन्हें भूखों रखने में हमें दुःख नहीं होता—कोई परेशानी नहीं ! हमारा आदर्श यह मालूम होता है—

'जीव हत्या मत करो, निज धर्म का पालन करो।
चाहे निकम्मे ही रहो, निर्जिव बनकर जिया करो ॥"

इससे कहीं अधिक दयालुता तो इसमें है कि हम थोड़े पशु पालें मगर उन्हें भर पेट खाना दें और अच्छी तरह रक्खें। और लाभ भी तो इसीमें है। इस तरह वे अधिक काम भी करेंगे और दूध भी अधिक देंगे। आज कल तो १०० में ७० गायें और भैंसें दूध देती ही नहीं। बाकी में से अधिकतर १ सेर रोज़ से भी कम दूध देती हैं, जहाँ उन्हें २$\frac{1}{2}$ सेर रोज़ के हिसाब से दूध देना चाहिये।

पिछले पृष्ठ के चित्र में एक जानवर एक करोड़ की जगह है और उन देशों में जितना दूध होता है उसकी जगह दूध दुहनेवाले हैं। इससे आपको मालूम होगा कि २$\frac{1}{2}$ करोड़ गायों से जर्मनी में उतना ही दूध होता है जितना हमारे देश में १८ करोड़ से।

अभी तक हम ज़मीन के लिये खाद और पानी, ज़मीन जोतने के लिये नये नये यन्त्र और दृढ़ पशुओं की व्यवस्था करने में लगे थे। मगर सबसे पहले तो खेती के लिये काफी ज़मीन होनी चाहिये न ? दुःख इसी का है कि हमारे पास काफ़ी ज़मीन नहीं है। आप कहेंगे—"अरे ! यह कैसी बात ?" इतना बड़ा हिन्दुस्तान और यहाँ काफ़ी ज़मीन नहीं है ? आप कहीं यह न सोचते हों कि मेरी बुद्धि तो नहीं खराब हो गई। खैर, घबराइये मत ! मैं आपको सच्ची हालत बतलाता हूँ।

७

ज़मीन की कमी

मेरे नौजवान भाई, अगर कोई आपको कागज़ का एक छोटा सा ताव दे दे और किसी बड़े विषय पर निबन्ध लिखने को कहे तो बताइये आप कैसे लिख सकेंगे? नहीं लिख सकेंगे न? या मेरी नन्हीं सी श्रीमती जी, आपको अगर एक गज़ ऊन दे दिया जाय और एक जर्सी बुनने को कहा जाय तो आप तो शायद हाथ भी नहीं लगायेंगी! लेकिन हमारे देश के अधिकतर किसानों से यह आशा की जाती है कि, जितनी ज़मीन होनी चाहिये उससे आधी ही ज़मीन के सहारे वे अपने परिवार के भरण पोषण के लिये काफ़ी गेहूँ, ईख या रूई पैदा करें।

अच्छा आइये हम देखें कि हमारे मित्र राम के पास कितनी ज़मीन है। हम यह पायेंगे कि, बहुत से किसानों की तरह, उसके पास भी चार एकड़ ज़मीन है। यह चार एकड़ भी एक जगह नहीं है, एक टुकड़ा यहाँ है तो दूसरा टुकड़ा वहाँ और बीच में दूसरों की ज़मीन है। उसकी ज़मीन से समझ लीजिये दो सौ रुपये सालाना की चीज़ें पैदा होती हैं। इसमें से राम ३०) रु० सरकार को मालगुज़ारी या कर की शकल में देता है; और ५०) रु० वह गाँव के महाजन से उधार लिये हुए रुपये के सूद के रूप में देता है। तो फिर उसके पास अपनी बीबी, तीन बच्चों, गाय और दो बैलों और अपने खेत पर खर्च करने के लिये १२०) रुपये बच जाते हैं यानी १०) रुपया महीना। फिर क्या आश्चर्य कि उसका परिवार आधा पेट खा कर रहता है, फटे चिथड़े लपेटे रहता है या उसे मलेरिया और उसके बच्चों को सूखा (rickets) की बीमारी हो जाती है। इसमें भी क्या आश्चर्य कि उसके पशु भूख के मारे होते हैं, उनकी हड्डियाँ निकली सी देख पड़ती हैं और उसकी गाय ढाई सेर के बदले रोज़ सेरभर दूध भी नहीं देती है? और फिर यही कौन सी बड़ी बात है कि वे सब ऐसी झोपड़ी में रहते हैं जिसके एक मात्र कोठरी में एक तरफ़ राम का परिवार और दूसरी तरफ़ पशु रहते हैं।
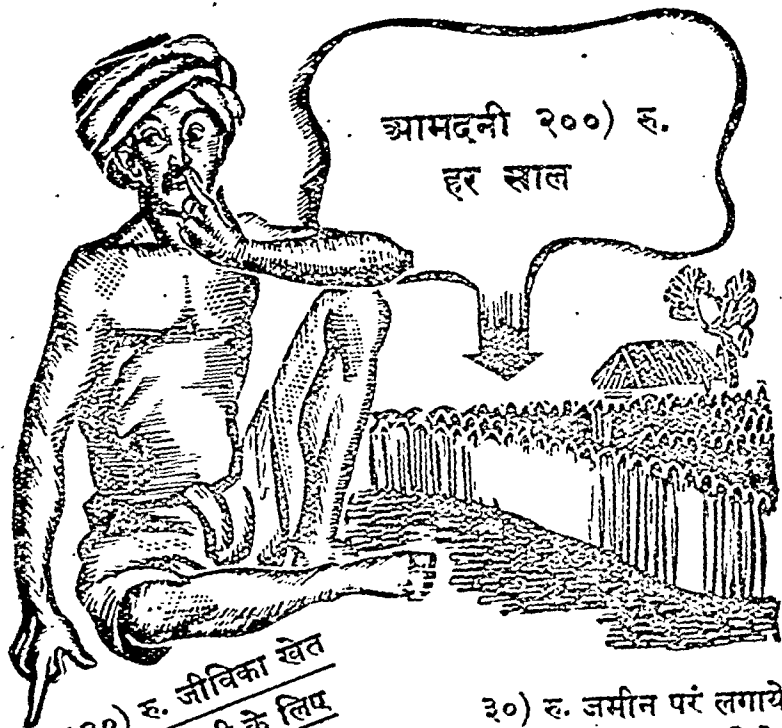
आमदनी २००) रु.
हर साल
१२०) रु. जीविका खेत
और मवेशी के लिए
३०) रु. जमीन पर लगाये
गये कर (tax) के लिये
५०) रु. कर्ज़
के सूद के लिए
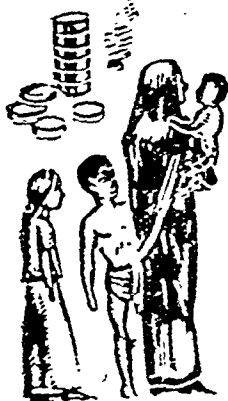
क्या आपको मालूम है कि दूसरे देशों के किसान कितनी ज़मीन पर खेती करते हैं? ब्रिटेन का एक किसान २६ एकड़ ज़मीन जोतता है और कैनेडा का किसान १४० एकड़ ज़मीन। इसका क्या कारण है कि राम और हमारे अधिकतर किसानों के पास तीन, चार या पाँच एकड़ ही ज़मीन है।

इसका उत्तर है रसद और माँग के नियम—खिलाने को बहुत लोग मगर ज़मीन बहुत कम। हिन्दुस्तान में बसनेवालों की संख्या हर साल बढ़ती गई है मगर देश की सीमा उतनी ही बनी रही। यही बात और देशों में भी होती आई है। मगर वहाँ बड़े बड़े शहरों में बड़े बड़े कारखाने खुल गये हैं और गाँवों से लोग इन शहरों को चले गये हैं और वहीं रहते भी और काम करते हैं। जर्मनी में १८७० और १९१४ के बीच २ करोड़ ५० लाख देहात के रहने वालों को शहरों के कारखानों में काम मिला। मगर हमारे देश में चार में तीन आदमी अपनी जीविका के लिये ज़मीन पर भरोसा करते हैं। इसका फल यह हुआ है कि क़रीब आधे किसानों के पास खेती के लिये काफ़ी ज़मीन नहीं है।

राम के दादा के पास राम से कहीं अधिक ज़मीन थी। मगर उनके चार बेटे थे और जब वे मरे तो उनके लड़कों ने आपस में ज़मीन बाँट लेने का निश्चय किया। क़ानून के अनुसार एक हिन्दू की मृत्यु के बाद उसके लड़के उसकी जायदाद को बराबर बराबर बाँट ले सकते हैं। तो हर एक ने ज़मीन का एक चौथाई हिस्सा ले लिया। जब राम के पिता मरे तो राम और उसके भाइयों ने अपने पिता की ज़मीन को फिर बाँट लिया, और इस तरह हर एक को ४ ही एकड़ ज़मीन मिली।

यह चार एकड़ भी एक जगा नहीं, क्योंकि जब जब ज़मीन का बटवारा हुआ सभी भाइयों ने पूरे खेत म से थोड़ी थोड़ी हर तरह की ज़मीन माँगी। और किसी तरह न्याय कैसे होता! हर एक ने थोड़ा हिस्सा अच्छी ज़मीन का थोड़ा मामूली ज़मीन का और थोड़ा सूखी ज़मीन का लिया। टुकड़ा किसे कहते हैं? एक छोटा सा हिस्सा या चप्पा जिसमें एक बड़ी चीज़ बाँटी

या तोड़ी जाती है उसेही तो टुकड़ा कहते हैं। ठीक यही हालत हमारे देश के खेतों की है—बड़े बड़े खेतों के टुकडे—छोटे छोटे टुकडे हो गये हैं। कहीं कहीं तो ये टुकडे इतने तग हैं कि जमीन जोतते वक्त बैलों का घुमाना भी कठिन हो जाता है। इसेही इतिहास की पुस्तकों में खेतों टुकडे टुकडे करना कहते हैं। यह बात इतनी बढ़ गयी है कि कुछ लोगों ने पेड़ों का बँटवारा करके ही दम नहीं लिया, उसकी शाखों और फलों को भी बाँट लिया!

इस तरह मनुष्यों तथा पशुओं की बहुत सी शक्ति नष्ट होती है। इसके फलस्वरूप राम साल में चार महीने बिल्कुल बेकार बैठा रहता है। बैलों से भी पूरा पूरा काम नहीं लिया जा सकता। चूंकि जमीन छोटे छोटे टुकडों में बाँट गई है और इन छोटे छोटे टुकड़ों को घेरने में बहुत व्यय होता है इसलिये घूमते फिरते पशु खेतों में घुस जाते हैं और फसल को खराब करते हैं। इसके अलावा इतने छोटे छोटे खेतों के लिये ट्रैक्टर और बड़ी बड़ी मशीनें कोई कैसे

खरीद और इस्तेमाल कर सकता है? अगर पानी मिल भी सके तो आपके इन छोटे छोटे खेतों में उसे पहुँचाया कैसे जाय? दूसरे लोगों के खेतों से होकर नहर निकाले बिना यह कैसे हो सकता है? और इन्हीं बातों को लेकर तो पड़ोसियों में झगडे हो जाते हैं।

यह अनुमान लगाया गया है कि राम की तरह एक किसान, जिसके परिवार में पाँच आदमी और जिसके पास दो बैल हैं, अपना और अपने पशुओं का पूरा पूरा उपयोग तभी कर सकता है जब उसके पास २० एकड़ का खेत हो। काम के दिनों में वह इससे ज्यादा ज़मीन, दो या तीन मज़दूरों की मदद से भी, अच्छी तरह काम में नहीं ला सकता। इस तरह जितना आज उसके खेत से पैदा होता है उसका पाँच गुना पैदा होगा। फिर तो उसे अच्छे बीज, जलावन के लिये लकड़ी और खेती के लिये नये यन्त्र खरीदने के लिये बहुत रुपये मिल जायेंगे।

तो क्या कोई ऐसा तरीका है जिससे हम राम को सोलह एकड़ ज़मीन और दे सकें? है क्यों नहीं? एक तरीका तो यह है कि उसके किसी पड़ोसी से इतनी जमीन ले ली जाय। दूसरे देशों में ऐसा किया गया है और अच्छे खासे खेत बना दिये गये हैं। लेकिन जिन लोगों से जमीन ले ली जायगी वे क्या करेंगे? अन्य देशों में तो किसी छोटे या बड़े शहर में कारखाने में काम मिल जायगा। मगर हिन्दुस्तान में तो बहुत कम कारखाने हैं। हाँ, १५ करोड़ एकड़ खेती के योग्य ज़मीन बेकार ज़रूर पड़ी है। लेकिन

अगर यह सारी ज़मीन भी जोत डाली जाय तो भी हर किसान को एक एकड़ से अधिक ज़मीन नहीं मिलेगी और तब तक क्या होगा ?

तब तक राम और उसके पड़ोसी इसके सिवा और कुछ नहीं कर सकते कि वे मिल जुल कर खेतों को अलग करने वाली झाड़ियां या घेरे तोड़ डालें और खेतों को एक साथ मिला कर हिस्सेदारों की तरह जोतें।

मान लीजियें कि राम के हर एक पड़ोसी के पास भी चार एकड़ ज़मीन है तो उन सब की ज़मीन मिल कर बीस एकड़ हुई। ज़मीन से उन्हें कितना मिलेगा ? आप कहेंगे, "राम को आज जितना मिलता है उसका पांच गुना।" ग़लत ! आप यह नहीं देखते कि जब पांच आदमी मिलजुल कर काम करते हैं तो श्रम विभाग का नियम लागू होता है। राम और उसके साथी यह समझ जाते हैं कि उनमें से कुछ लोग किसी एक काम को अच्छी तरह करते हैं और दूसरे लोग दूसरी तरह के कामों को खूब अच्छी तरह कर लेते हैं। अपने छोटे छोटे खेतों पर उन्हें इसकी परेशानी रहती थी कि वे सभी काम थोड़ा थोड़ा कर लेते थे मगर कोई काम अच्छी तरह नहीं कर पाते थे। मगर अब हर आदमी कोई खास काम अपने हाथ में ले सकता है और इस तरह ज़मीन से पांच गुना ही नहीं छः या सात गुना ज्यादा फसल होगी।

फिर चूंकि उनको एक जोडे बैल से अधिक की आवश्यकता नहीं है वे चार जोडे बैलों को बेंच दे सकते हैं। इस तरह कुछ रुपये बचा कर वे अपना पशुओं को खिला पिला सकेंगे और जो दाम मिलेगा उससे वे कुछ कल यन्त्र और शायद अच्छी से अच्छी खाद भी खरीद सकेंगे। इससे उनकी ज़मीन और अच्छी हो जायगी। तो फिर कभी कभी—मगर कभी ही कभी- ४×५=२० हो जाता है। जब लोग मिलजुल कर काम करते है तो ऐसा ही होता है। यों सभी लाभ में रहते हैं। हिन्दुस्तान में कहीं कहीं यह किया भी गया है विशेष कर पंजाब में, और इसके बडे बडे अच्छे फल भी हुए हैं। आवश्यकता इस बात की है कि सारे देश में सम्मिलित कृषि समितियां स्थापित की जायँ।

१५ करोड़ एकड़ ज़मीन ऐसी है जो खेती के योग्य है मगर बेकार पड़ी है। यही से काम शुरु किया जा सकता है।

ये ज़मीनें उतनी अच्छी नहीं हैं, नहीं तो यों पड़ी थोड़े ही रहतीं। फिर भी, अगर उन्हें १०० एकड़ के खेतों में बाँट दिया जाय और चार किसानों को, उनके परिवार के साथ, उस पर बसा दिया जाय और ५००) रु०, खेती के योग्य बनाने, पानी लाने के लिये नहरें, बाज़ार जाने के लिये सड़कें बनाने और मशीन और पशु खरीदने में खर्च किये जाएँ तो कहा जाता है कि, दस वर्ष के बाद, खाद्य पदार्थ तथा कच्चे माल के रूप में ८०० करोड़ रुपये सालाना की आमदनी होने लगेगी जो हिन्दुस्तान की ज़मीन की पैदावार का दो तिहाई हिस्सा होगा।

यह तो काफ़ी बड़ी बात होगी। फिर भी हम अपनी अच्छी ज़मीनों को, अच्छी से अच्छी को, आज की हालत में थोड़े ही छोड़ दे सकते हैं ? कठिनाई तो यह है कि यद्यपि सहयोग कृषि अच्छी चीज़ है, हमारे किसान समझदारी से काम नहीं लेते। यही कारण है कि इसमें सरकार को हाथ डालना होगा और किसानों को बडे २ खेत बनाने पर बाध्य करना होगा।

जर्मनी में हिटलर की सरकार ने एक कानून बना कर यह तय कर दिया था कि हर एक खेत इतना बड़ा होना चाहिये कि उससे एक परिवार के लिये काफी खाना, कापड, और दूसरी आवश्यक वस्तुएँ मिल सकें। किसीका खेत बहुत बड़ा भी न हो, यह भी इस कानून ने तय कर दिया है। इस तरह बहुत अधिक ज़मीन खरीद कर दूसरों को बेज़मीन कर देना भी रोक दिया गया था। इस कानून के अनुसार बनाये गये खेतों को तोड़ कर छोटा करने की मनाही थी, उन्हें लगाने पर भी उठाया नहीं जा सकता था, और न महाजनों को कर्ज के बदले रेहन ही किया जा सकता था।

सोवियट रूस में बडे बडे सम्मिलित खेत बनाये गये हैं। इनमें सैकड़ों आदमी काम करते हैं। इनमें सबसे बड़ा, जिसका नाम "जाइगेंट" है, सचमुच बहुत ही बड़ा है वह दुनियाँ में सबसे बड़ा गेहूँ का खेत है। यह
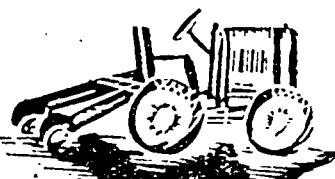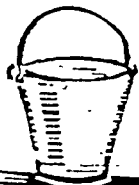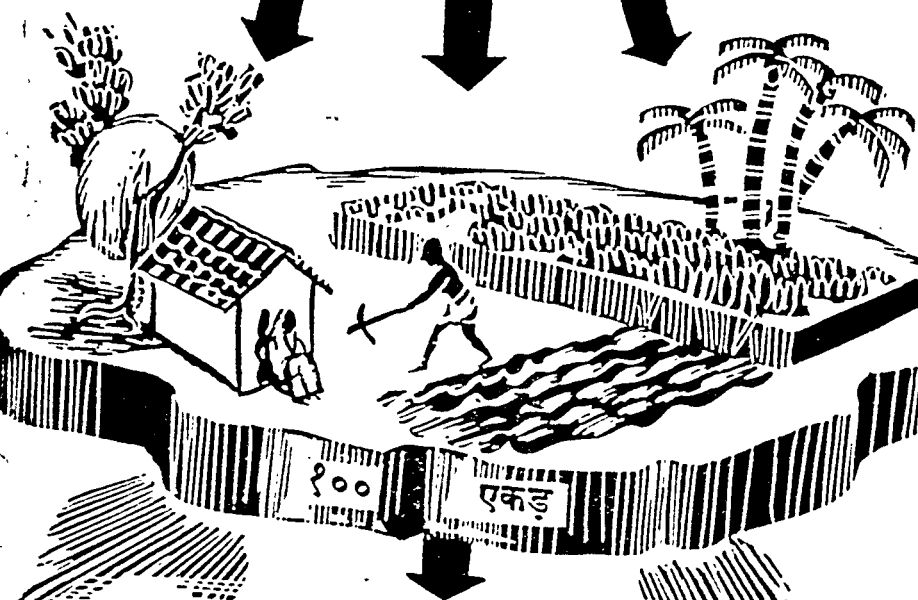
नहरें
मशीनें
मवेशी
५००) रु.
१०० एकड़
५,३३३) रु.

उत्तर से दक्षिण ५० मील और पूर्व से पश्चिम ४० मील लंबा है। इनमें १७००० आदमी काम करते हैं। वहाँ यह लोग एक बहुत बड़ी मशीन इस्तेमाल करते हैं, जो फ़सल काटती है, अनाज झाड़ती है और भूसी अलग करती है। एक आदमी इस मशीन को चलाता है मगर वह हाथ के यन्त्रों से काम करनेवाले १०० आदमियों के बराबर काम करती है। संसार के इतिहास में यह एक नई बात है-बिना दीवार या छत का बड़ा कारखाना। यह परिवर्तन आश्चर्यजनक है क्योंकि १९१७ में रूसी क्रान्ति के पहले रूस के किसान हमारे

किसानों की तरह अपने छोटे छोटे खेतों को जोतते थे और यहाँ के ही किसानों की तरह ग़रीब भी थे। अंग्रेजी कहानियों के 'हॉप ऑन माई थम्ब' की तरह, लम्बे लम्बे बूट पहिने हुए, वे हम लोगों से बहुत आगे निकल गये हैं। वह 'लोहे का घोडा' जैसा कि ट्रैक्टर को लोग कहते हैं, रूसी किसान का सबसे बड़ा मित्र बन गया है।
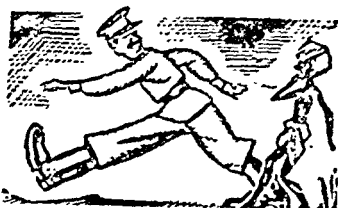
१९३५ में जब मैं रूस गया था तो हवाई जहाज में हजारों मील की सैर की। ऊपर से वहाँ की ज़मीन, इंग्लैंड, फ्रांस या हिंदुस्तान की ज़मीन की तरह बिल्कुल ही नहीं लगती थी। इन देशों में ज़मीन, छोटे बड़े अजीब तरह के टुकड़ों में बँटी हुई, विचित्र सी लगती है। मगर रूस की भूमि का दृश्य तो शतरँज के बिसात की तरह होता है। जिसमें खेत तो खानों और मकान या पुआल के ढेर मोहरों की तरह नज़र आते हैं।

मैं वहाँ आरमीनियम सोवियट प्रजातन्त्र के एक गाँव में गया। यह गाँव पिछले १० वर्षों में पुराने तरीके की खेती छोड़ कर सम्मिलित खेती करने लग गया था। इस छोटे गाँव का नाम परक्कर था। इसमें २५० परिवार मिल कर काम करते थे। फल यह हुआ कि रूई की पैदावार २४० किलोग्राम फ़ी एकड़ से बढ़ कर ६४० किलोग्राम हो गयी। [एक किसान से मैंने बात-चीत की। अब उसे ५०० रूबल (रूसी रुपया) हर महीने सहयोग खेती से

उसके हिस्से के मिलते हैं पहले जब वह स्वयं अपनी छोटी सी ज़मीन जोतता था केवल १५० रूब्ल महीना कमाता था।]

जिस तरह की बातों का मैंने वर्णन किया है अगर वैसे हम हिन्दुस्तान में काम करें तो मुझे कोई शक नहीं कि यहाँ भी बड़ी आश्चर्यजनक बातें की जा सकती हैं। बस अधिक नहीं, पाँच चीजे हम कर डालें तो अपनी ज़मीन से उतना ही पैदा कर लेंगे जितना कि अंग्रेज़ अपनी ज़मीन से पैदा करते हैं

सहयोग कृषि

और इस देश में ताश के घर न बना कर हम पक्के मकान बना लें जो कुछ दिन टिकें भी। ये पाँच चीजें क्या हैं?

(१) ज़मीन को फिर से बड़े बड़े खेतों में बाँट दीजिये। २० एकड़ से कम कोई खेत न हो। ज़मीन जोतनेवालों को इस बात के लिये तैयार कीजिये कि वे अपने पड़ोसियों से मिल कर सम्मिलित खेती में मदद दें। जो ज़मीन अभी बेकार पड़ी है उसमें १०० एकड़ के बडे बडे सम्मिलित खेत बनाईये।

नहरें

(२) और अधिक नहरें और कुएँ बनाये जाएँ जिनसे ज़मीन के पाँचवें हिस्से की ही नहीं कुल ज़मीन की सिंचाई हो सके।

जंगल लगाना और खाद डालना

(३) अपने जँगलों की देखभाल की जाय। इनमें से जलावन के लिए लकड़ी ली जाय, ताकि और तरह की खाद के साथ गोवर की खाद से काम लिया जा सके।

मशीन
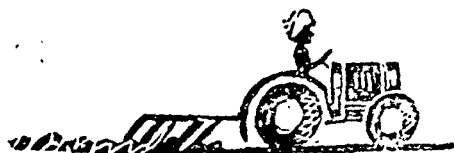
(४) अपने किसानों को हम नये यन्त्र और अच्छे बीजों का प्रयोग करना सिखायें।

मवेशी

(५) अपने बेकार और भूखे पशुओं की संख्या कम कर के जो बचे उन्हें अच्छी तरह खिलायें पिलायें। इतना अगर हम कर लें तो हम हिन्दुस्तान की शकल बदल देंगे; वह हरियाली से लहरा उठेगा। मगर इसके लिये एक काम पहले ही कर लेना है। जिन किसानों के लिये खेती में कोई काम नहीं है उनके लिये कोई काम हमें ढूंढ निकलना होगा।

८

पेड़ पर का ऊन

"एक पेड़ जो फल के बदले भेड़ों की ऊन से अधिक महीन और अच्छा ऊन पैदा करता है जिससे हिन्दुस्तानी कपड़े बनते हैं।" ग्रीक इतिहासज्ञ हिरोडोटस ने दो हज़ार वर्ष पहिले इस विलक्षण वस्तु रूई का वर्णन इसी तरह किया था। लगभग उसी समय एक विदेशी जो हिन्दुस्तान आया था, रूई का यह आश्चर्यजनक वर्णन कर गया था—"वृक्ष से पैदा होने वाला मेमना जो आसपास के वृक्षों को खा जाता है!"

अभी हाल में सिन्ध के मोहिंजोदारो नामक स्थान में प्राचीन भारत के एक नगर के खँडहर मिले। उन्हें जब यह जानने के लिये खोदा गया कि उस समय लोग किस तरह रहते थे तो वहाँ सूती कपड़े मिले। इसकी जानकारी रखनेवालों का कहना है कि यह पाँच हज़ार वर्ष पहले की बात है। इससे मालूम होता है कि हम लोगों ने सबसे पहिले रूई का प्रयोग करना शुरू किया, और बतलाया है कि रूई से कपड़े बनाने का हिन्दुस्तानी व्यवसाय कितना पुराना है। आज भी यह हमारा सबसे बड़ा व्यवसाय है। तभी तो हम इस अध्याय में, इसपर विचार करने चले हैं।

वास्तव में बहुत पुराने समय से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय तक हिन्दुस्तान का कपड़ा एशिया और यूरोप के बाज़ारों की आवश्यकता पूरी करता था। ये कपड़े देखने में इतने अच्छे और इतनी तरह के होते थे कि हिन्दुस्तान के कपड़े बुननेवालों का नाम सारे संसार में प्रसिद्ध था। ढाका के मलमल की बारीकी की बराबरी मकड़ी के जाले से की जाती थी। कहा जाता है कि मुग़ल बादशाह औरंगजेब ने अपनी लड़की को एक बार इसलिये डाँटा था कि वह बादशाह के विचार में नहीं के बराबर कपड़े पहिने थी।
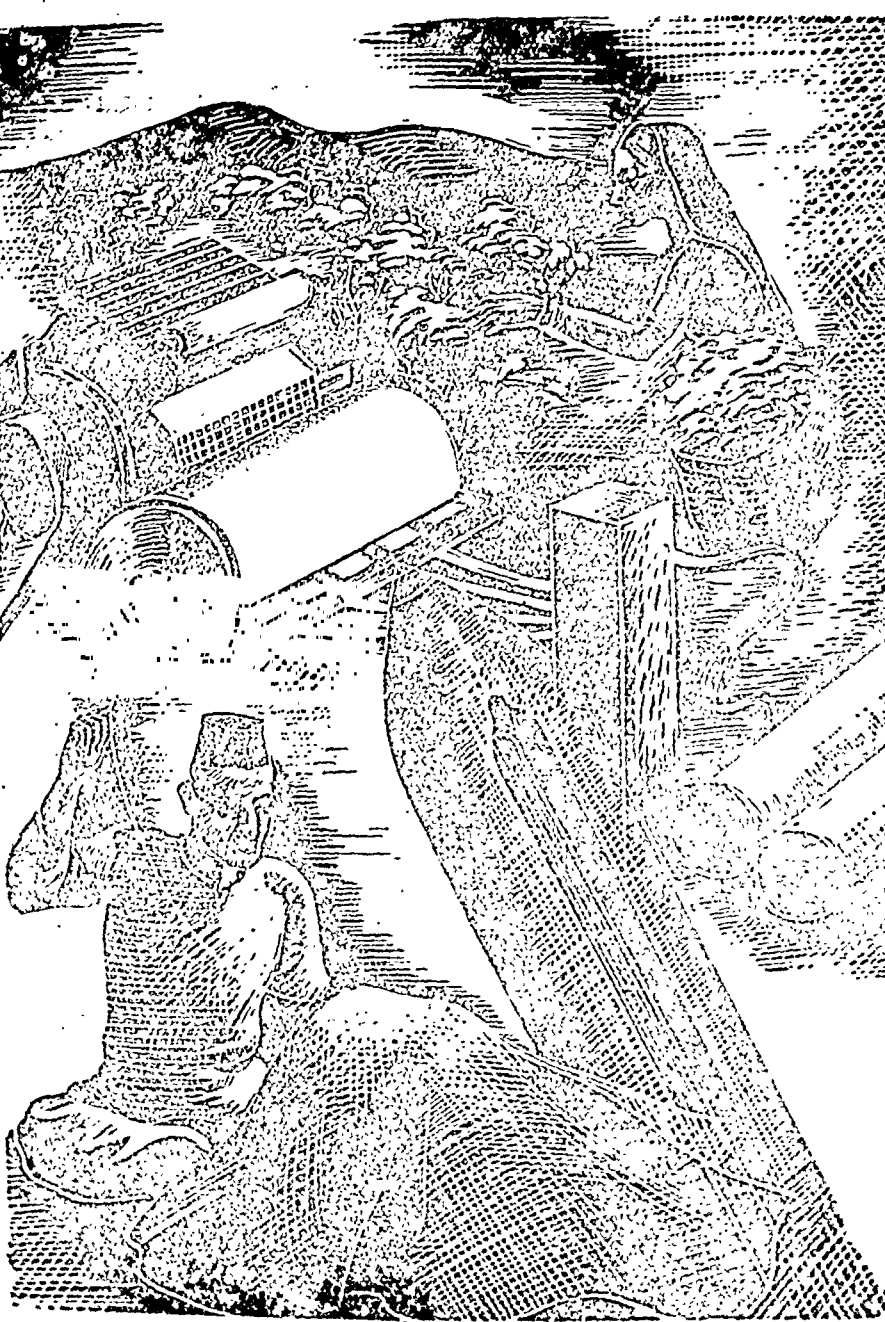
शाहज़ादी ने प्रतिवाद किया कि सात परत लपेटने पर वह हालत थी।

सन १७०१ में कानून बना कर इंग्लैंड में कैलीको यानी कालीकट के बने हुए कपड़ों का व्यापार रोक दिया गया था क्योंकि इनके कारण ब्रिटिश कपड़े बाज़ार में बिक नहीं पाते थे। १८१५ तक हिन्दुस्तान से सिर्फ़ इंग्लैंड को साल में १२,००,००० पाउण्ड का कपड़ा भेजा जाता था।

इसके बाद मशीन का युग आया और बिल्कुल ही उल्टी धारा बहने लगी। लैंकाशायर का कपड़ा हिन्दुस्तान में भरने लगा।

बहुत दिनों के बाद, १८५३ में बम्बई में सबसे पहिली सूती मिल चलीं। आज बम्बई में ६९ मिलें हैं और सारे हिन्दुस्तान में ३९० मिलें हैं। इनमें चार लाख मज़दूर काम करते हैं।

इन मिलों से साल में ४०० करोड़ गज़ सूती कपड़ा बनता है। मगर यह हम हिन्दुस्तानियों की आवश्यकता के दो तिहाई हिस्से से भी कम हैं क्योंकि हिन्दुस्तान साल में ६२५ करोड़ गज़ कपड़ा व्यवहार करता हैं। शेष आवश्यकता दो तरह से पूरी होती है। कुछ तो उन छोटी २ मशीनों पर बनता है जिन पर कपड़ा बुनते हैं और जो हाथ से चलाई जाती हैं, जिन्हें कर्घा कहते हैं। करीब ४० लाख आदमी इन हाथ की मशीनों पर काम करते हैं और १५० करोड़ गज़ कपड़ा बनता है। इंग्लैंड और जापान की तरह देशों से हम ७५ करोड़ गज़ कपड़ा खरीदते हैं।

आप सोचेंगे यह विचित्र बात है। अपनी आवश्यकता के लिए कपड़ा यहाँ न बना कर हम बाहर से क्यों मँगावते हैं? हमारी बहुत ज़मीन तो विशेषकर रुई की फ़सल के लिए बहुत ही उपयुक्त है।

अगर मैं एक बात बताऊँ तो आपको और भी आश्चर्य होगा। ऐसी बात नहीं है कि हमारे देश में इतने कपड़ों के लिये काफ़ी रुई नहीं पैदा होती। बंगाल, बिहार, और आसाम और सीमाप्रान्त को छोड़कर बाक़ी हिन्दुस्तान में एक छोर से दूसरे छोर तक रुई पैदा होती है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को छोड़ कर हम लोग दुनियाँ में सबसे बड़े रुई पैदा करनेवाले हैं और साल

में ३० लाख गाँठ रूई यानी अपनी फ़सल का प्राय: आधा भाग विदेश भेजते हैं। इसमें आधे से अधिक जापान लेता है। और जापान ही कपड़े के व्यापार में हमारा सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी है। जापान इसी रूई से कपड़ा बना कर हमारे पहिनने के लिये हिन्दुस्तान वापस कर देता है। हमारे मज़दूर इतने आलसी हैं, हमारी मिलों के मालिक इतने अयोग्य हैं और हमारी मशीनरी इतनी पुरानी और घटिया है कि हमारी ही रूई से कपड़े बना कर, जापानी बम्बई और अहमदाबाद में बने कपड़ों से सस्ते दाम पर इस देश में बेचते हैं।

दूसरी तरफ़ इतनी अतिरिक्त रूई होते हुए भी हमारी मिलें अमेरिका, मिश्र और अफ्रिका से रूई खरीदती हैं! इसका कारण यह है कि हिन्दुस्तानी रूई का रेशा छोटा होता है और महीन कपड़ा बनाने के लिये लम्बे रेशे की रूई चाहिये।

तो फिर तीन बातें बहुत ही साफ मालूम होती हैं। हम लोग अपनी आधी
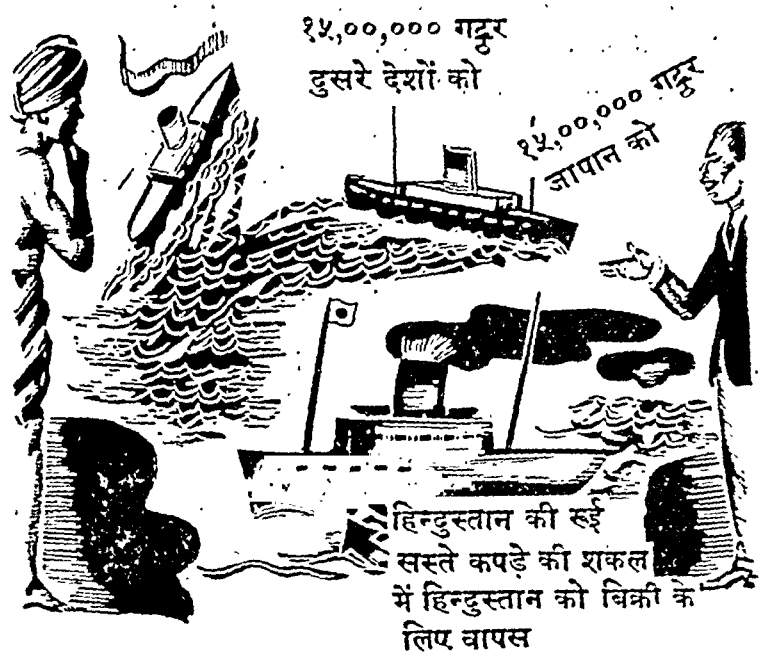
के क़रीब रूई विदेश भेज देते हैं; दूसरी तरह की रूई वाहर से मँगवाते हैं और जितने कपड़े पहिनते हैं उसका आठवाँ हिस्सा वाहर से मँगवाते हैं। ध्यान देने पर कोई क़ारण नहीं मालूम होता कि इन तीनों में से एक भी हम क्यों करें।

सबसे पहले तो इसका कारण समझ में नहीं आता कि हम कुछ भी रूई वाहर से क्यों मँगवायें। हमारी मिलों के मालिक कह सकते हैं, "मगर हमें महीन साड़ियाँ बनाने के लिये लम्बे रेशे की रूई चाहिये।" अच्छा तो, महात्मा गांधी के होते हुए भी, यदि रूपवंती महिलाओं को महीन साड़ियाँ चाहिएँ ही तो हमें ऐसी रूई अपने देश में पैदा करना शुरु कर देना चाहिये। आजकल हम छोटे रेशे की रूई वहुत अधिक और लम्बे रेशे की वहुत काम पैदा करते हैं। हमारे पास ज़मीन अच्छी है और काश्तकर भी हैं। करना इतना ही है कि जैसे वीज की आवश्यकता है वह उन्हें दिया जाय और मदद दे कर आजकल की रूई के वदले उन्हें लम्बे रेशे की रूई पैदा करने की हिम्मत दिलाई जाय। इतना क़रने पर हिन्दुस्तान में एक गाँठ भी रूई वाहर से मँगवाने के लिए कोई वहाना नहीं मिलेगा।

फ़िर भी वाहर से, विशेष कर लैंकाशायर और जापान से कपड़ा आता ही है। जितना अधिक पहले आता था उतना तो अव नहीं आता फिर भी हमारे आयात का सबसे वड़ा हिस्सा इसी का है। अव भी हिन्दुस्तानी मिलों के बने कपड़े और खद्दर ने विदेशी कपड़े की जगह अधिकांश में तो ले ही ली है। मगर कोई कारण नहीं कि एक गज़ भी विदेशी कपड़ा हमारे देश के अन्दर क्यों आये, विशेष कर उन चीजों के वनाने के लिए जो छोटे रेशे की रूई से वन सकती हैं जैसे वरसाती कपड़ा, मसहरी की जाली, मोजे, रूमाल और सिलाई का डोरा।

जैसा कि हम देख चुके हैं, हमारे किसान साल में चार महीने वेकार रहते हैं। हाथ से सूत कातना और कपड़े वुनाना उनके लिए वड़े लाभ के काम हैं। जव खेत पर काम नहीं होता और वे वेकार होते हैं तव इससे अच्छा काम उन्हें हम नहीं दे सकते।

अगर अधिकतर किसानों के घरों में चर्खा या कुवाँ हों जिन पर वे उनकी स्त्रियाँ और उनके बड़े बड़े बच्चे छुट्टी के समय काम कर सकें तो जो लोग आज विदेशी कपड़ा खरीदते हैं उनकी आवश्यकताओं को वे पूरा कर सकते हैं।

आप कहेंगे यह तो बड़ी अच्छी बात है। लेकिन अगर हम इंग्लैंड या जापान से कपड़ा नहीं खरीदना चाहते तो वे हमारी शेष रूई क्यों खरीदेंगे।

यह प्रश्न तो बड़ी समझदारी का है मगर इससे अधिक परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। सबसे पहले विदेश भेजी जानेवाली रूई का काफ़ी हिस्सा तो चर्खे की बढ़ती हुई पैदावार ही इस्तेमाल कर डालेगी।
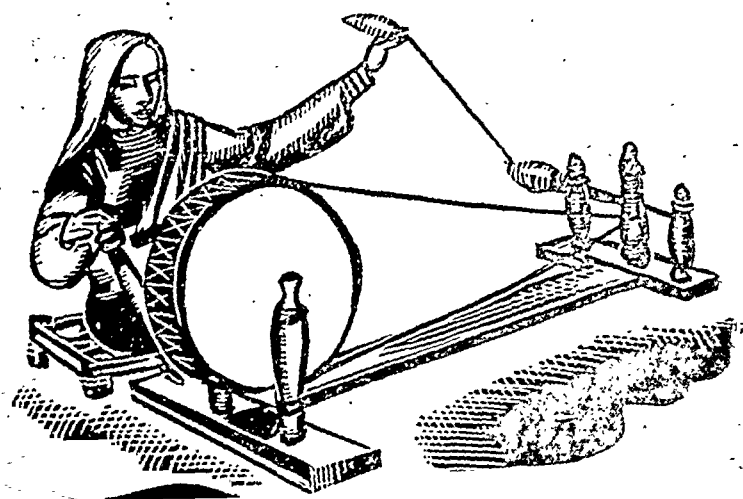
अगर हम यह मान लें कि कोई दूसरा देश हमारी रूई नहीं लेगा तो कुछ रूई देश में बच रहेगी। यही न? प्रश्न यह है कि इस रूई का होगा क्या? इसका हल तो आसान है!

अपने कभी इस बात पर ध्यान दिया है कि अधिकतर हिन्दुस्तानी महात्मा गांधी की तरह कपड़े क्यों पहनते हैं? इसका उत्तर यह है कि इस देश में हर आदमी के हिस्से में बहुत ही कम कपड़ा पड़ता है—१६) गज़

सालाना। और अगर औरतों की साड़ियों की लम्बाई का विचार कीजिये तो मर्दों के लिए रह ही क्या जाता है? वास्तव में अधिकतर हिन्दुस्तानी फटे चीथड़े लपेटे फिरते हैं और ठंडे प्रदेश के रहनेवाले तो जाड़ों में इसलिये ठिठुरते रहते हैं कि उनके पास आवश्यक कपड़े खरीदने को पैसे नहीं होते।

अच्छा, यह मान लीजिये कि हमारा किसान और भी समृद्ध हो जाता है—हम यह देख चुके हैं कि यह कितनी सावधानी से हो सकता है—और कुछ अधिक कपड़े खरीद सकता है। अच्छा, अधिक नहीं, अगर हम उसे एक और धोती अपने लिये तथा एक साड़ी अपनी स्त्री के लिये खरदिने देते है तो क्या, हिन्दुस्तान की सभी मिलों में रात को भी काम करने तथा सभी चर्खों के सुमधुर घरंघर के कारण, यह सारी रूई काम में न आ जायगी?

इसके सिवा सिर्फ़ पहनने के लिये कपड़े बनाने में ही रूई का व्यवहार नही होता। रूई दूसरे कितने ही कामों में लायी गयी है और लाई जा सकती है। मोटर टायरों के अन्दर अस्तर की जगह इसका व्यवहार किया जा सकता है। हमारी सड़कों के ठीक नीचे ऐसी कितनी चीज़ें डाली जाती हैं जिनसे सड़कों में मज़बूती और लचीलापन आता है और इसके लिए रूई का व्यवहार किया जा सकता हैं।

तिरपाल, जो कि बरसाती का काम देता है, अभी तक सन से बनाया जाता था। सन १९३९ में जब लड़ाई शुरू हुई और सन का मिलना बन्द हो गया तो किसी ऐसी चीज़ की आवश्यकता हुई जिससे तिरपाल बनाया जा सके। हिन्दुस्तानी रूई से ही वह काम लिया गया। इंग्लिस्तान ने हिन्दुस्तान से ४६ लाख रुपयों का सूती तिरपाल मँगवाया है और यह नई चीज़ लाखों गज़ की तादाद में बनायी जायगी। अभी २ का समाचार है कि बोरे और गांठ लपेटने के लिए कपड़ों को, जो अभी तक जूट से बनते थे, अब जूट में रूई मिलाकर बनाने का प्रयोग किया जा रहा है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि ये सारी चीज़ें छोटे रेशे की रूईसे बनाई जा सकती है।

तो हमें इसकी चिन्ता नहीं होनी चाहिये कि हमारी रूई कौन खरीदेगा?
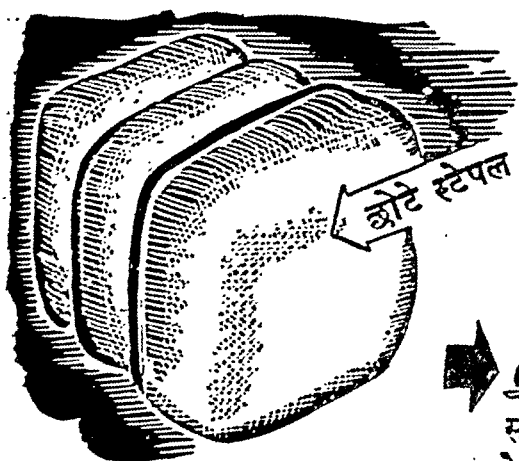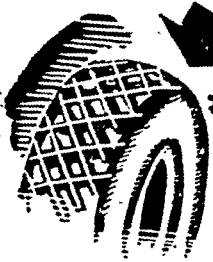
छोटे स्टेपल की रुई
सड़कों में डालने के लिए
मोटर टायरों के अस्तर के लिए
तम्बू के लिए
बोरों के लिए
मोज़ें और रुमालों के लिए

हमारे देश में ही इतने लोग हैं कि जितनी भी रूई हम पैदा करेंगे सब व्यवहार में आ जायगी।

जिन बातों का हमने वर्णन किया है अगर उनमें से थोड़ा भी हम कर सकें तो विदेशी कपड़े और रूई के लिए रुपये हिन्दुस्तान से बाहर भेजना बन्द हो जाय, लाखों किसानों को, जो साल में चार महीने बेकार रहते हैं, हम काम दे सकेंगे और हम वैसे ही अच्छे और सुन्दर कपड़े पहन सकेंगे जैसे कि यूरोप और अमेरिका के नर नारी पहनते हैं। तब एक साधारण हिन्दुस्तानी का चित्र बदल कर कुछ इस तरह का हो जायगा।

हमने इस अध्याय में इस देश के सूती व्यवसाय का इस लिये वर्णन किया है कि यह हमारा सबसे पुराना, सबसे बड़ा व्यवसाय है। लेकिन कपड़े तैयार करने में हमें जो कठिनाइयाँ होती हैं वह बहुत कुछ उसी तरह की हैं जो कि और वस्तुएं तैयार करने के समय हमारे सामने आती हैं।

हर एक बड़े कारखाने को, जो कपड़े, जूते, दियासलाई या मोटर गाड़ी तैयार करता है, पाँच चीज़ों की आवश्यकता होती है। सब से पहले तो जो चीज़ें वहाँ बनाई जाती हैं उन्हें ख़रीदनेवाले चाहियें, यानी उन वस्तुओं के लिये बाज़ार चाहिये। हिन्दुस्तान की इतनी बड़ी आबादी, जिसे जीवन की बहुत सी आवश्यकताएँ नहीं मिलतीं, दुनियाँ में सब से बड़ा बाज़ार है।

फिर तैयार चीज़ों के बनाने के लिये कच्चा माल चाहिये। हमने देखा कि हमारे पास वह सब कच्चा माल है जिसकी आवश्यकता किसी भी देश को पड़ सकती है; और वह भी थोड़ा नहीं; बड़ी अच्छी तादाद में है।

इसके बाद कारख़ानों में काम करनेवाले चाहियें यानी मज़दूर। यह आवश्यकता तो हमारे गाँवों की फ़ाज़िल आबादी आसानी से पूरी कर सकती है। ये लोग तो तैयार बैठे हैं कि कारखानों के फाटक खुलें और वे उनमें घुसें।

ऊर्जा
मज़दूर
मशीनरी
कच्चा माल
माँग
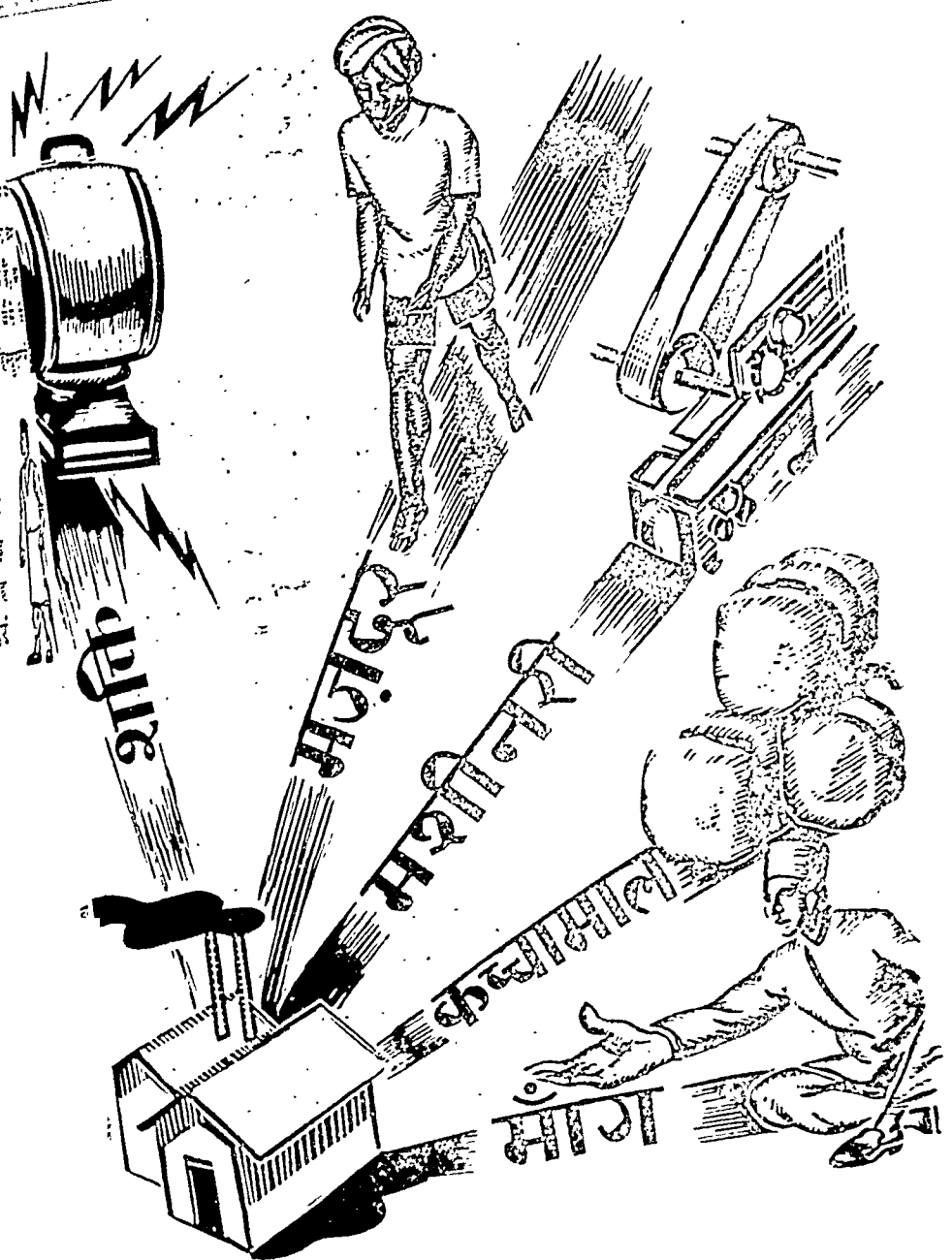
एक अच्छे लाभदायक उद्योगधन्धे के लिये दो चीज़ें और आवश्यक हैं। एक तो तेज़ी के साथ अधिक संख्या में चीजें बनाने के लिये मशीनें और दूसरी किसी तरह की शक्ति (Power) जिसे मशीनों में पहुँचा कर उन्हें चालू किया जा सके। उदाहरण के लिये हम देख चुके हैं कि यद्यपि हमारी अधिकतर सूती मिलें पश्चिम हिन्दुस्तान में हैं, जहाँ सस्ते में पानी से बिजली की शकल में शक्ति पैदा की जा सकती है, उनकी मशीनें अक्सर पुरानी और घटिया है। इसका कारण यह है कि हिन्दुस्तान में मशीनें कम बनती हैं और हमें सारी मशीनें यूरोप या अमेरिका से मँगवानी पड़ती हैं और इस तरह वह बहुत महँगी पड़ जाती हैं। इस लिए हम लोग नयी, नये से नये तर्ज़ की मशीनें नहीं खरीदना चाहते और पुराने तर्ज़ की मशीनों से काम चलाते हैं।

अगर यह ठीक है कि हिन्दुस्तान को बहुत बड़े २ कारखानों के बिना बहुत सी चीजें नहीं मिल सकती और मशीन और शक्ति के बिना हम फैक्टरी नहीं चला सकते, तो फिर आइये हम इसकी खोज में निकलें कि यह दो दानव हमें कहाँ मिलेंगे और इनसे हम कैसे काम ले सकेंगे। मुझे विश्वास है कि यह खोज बड़ी मनोरंजक रहेगी क्योंकि इस सिलसिले में आप ऐसी जगह जा पहुचेंगे जहाँ आप पहले कभी नहीं गये हैं—यानी धरती के अन्दर।

९

हमारे धरती में गड़े रत्न

आजकल लोग अपनी बहुमूल्य वस्तुएँ लोहे के बक्सों (safes) में रखते हैं या रक्षा के लिए उन्हें बैंकों के सुरक्षित कमरों में छोड़ आते हैं। लेकिन पुराने ज़माने में जब बैंक और मजबूत कमरे नहीं थे तब जो जो लोग अपनी बहुमूल्य वस्तुएँ सुरक्षित रखना चाहते थे, दूसरे लोगों की आंखें बचाकर, उन्हें ज़मीन के अन्दर गाड़ देते थे। फिर जब उहें आवश्यकता होती थी खोद कर निकाल लेते थे।

हम बहुत सी बातों में प्रकृति का अनुकरण किया करते हैं। इस मामले में भी, शायद अनजाने ही, हम प्रकृति का अनुकरण करते आये हैं। क्योंकि मनुष्य की उत्पति के बहुत पहले, प्रकृति ने अपनी बहुमूल्य वस्तुएँ धरती के अन्दर छिपा रक्खी थीं। हज़ारों वर्ष बाद जब मनुष्य जानवरों की हालत से ऊपर उठने के उपाय ढूँढ़ रहा था और अज्ञानरूपी अन्धकार में भटक रहा था, उसे अनायास ही, जहाँ तहाँ, वे गुप्त रत्न मिलते गये। पहले तो आश्चर्य के कारण उसे चकाचौंध सी लग गयी। मगर धीरे धीरे उसने इन सब चीज़ों का – चाहे वे सोने और हीरे की तरह सुन्दर और चमचमाती हुई या लोहे तथा कोयले की तरह मन्द और डरावनी या पेट्रोलियम की तरह तरल चीज़ें थी—कोई न कोई प्रयोग ढूँढ़ निकाला।

ये चीज़ें, जो न तो जानवरों की तरह हैं न शाके भाजी की तरह, खनिज पदार्थ कहलाती हैं और धरती के अन्दर इनके आराम करने की जगह को खान कहते हैं। हमारे लिए इनका विशेष महत्व इस कारण है कि इन्हीं खनिज पदार्थों से हम मशीनें बनाते हैं और शक्ति पैदा करते हैं।

प्रकृति ने सभी पर सामान रूप से कृपा नहीं की है। इसके फलस्वरूप पृथ्वी के एक हिस्से के रहनेवालों बहुत सा कोष मिल जाता है और दुसरे हिस्से के रहनेवाले धरती को व्यर्थ ही खोदते खादते रहते है।

आखिर हम हिन्दुस्तानियों ने कैसी जगह अपना घर बनाया है? मैं तो कहूँगा कि हम घाटे में नहीं है। कोयला, लोहा और दूसरे खनिज पदार्थों पर अधिकार करके हम आज भी २८ करोड़ रुपये पैदा करते हैं और ३,०५,००० लोग इसमें काम करते हैं। मगर जो हम कर सकते हैं उसका विचार करते हुए यह कुछ भी नहीं है क्योंकि धरती के अन्दर की अपनी सम्पत्ति का उपयोग करके तो हम संसार के अच्छे से अच्छे व्यवसायी देशों का मुकाबला कर सकते हैं। धरती के अन्दर गड़े रत्नों का बहुत ही अच्छा हिस्सा हमारे हाथ लगा हैं। आइये, हम इसे खोज निकालें।

शायद, बूढ़े बादशाह कोयले से ही आरम्भ करना अच्छा होगा। कोयले की खान को क़ब्रिस्तान कहा गया है। क़ब्रिस्तान में तो लोग मरने के बाद गाड़े जाते हैं। मगर खान में कौन सी चीज़ दफ़नायी जाती है?

नहीं कोयला नहीं, यद्यपि आज तो आपको वहाँ कोयला ही मिलता है। हजारों वर्ष पहले जो चीज़ें वहाँ दफ़ना दी गयीं वह थीं दलदल की घास, तरह तरह के पौधे—कभी कभी तो सारा का सारा जँगल। वहाँ बालू, काली मिट्टी और चट्टानों की तह पर तह के नीचे दबे दबे उनकी शक्ल बदलने लगी। इस तरह शताब्दियाँ व्यतीत हो गयीं और वे दिन पर दिन अधिक कड़े और काले होते गये; जब हमने उन्हें देख पाया तो कोयला कहा।
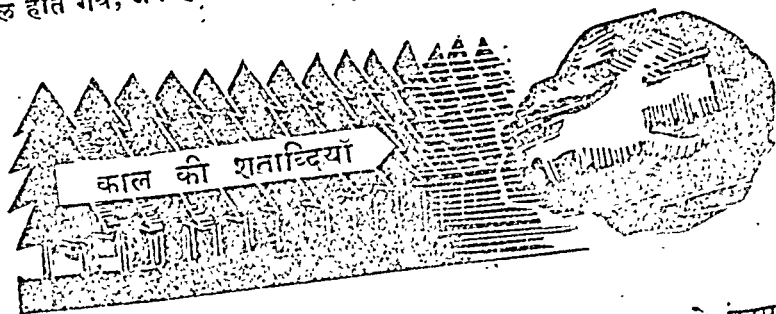
कोयले को कभी कभी काला हीरा भी कहते हैं। आखिर इतने बहुमूल्य और इतने दुर्लभ पत्थर से इसकी तुलना क्यों की जाती है? क्योंकि देखने में इतने अनमेल होते हुए भी, दोनों में ही कार्बन है। इस लिए भी कि कोयले का असली मूल्य मालूम हो जाय। वास्तव में कोयला हीरे से कहीं बहुमूल्य वस्तु है क्योंकि उसे हम तरह तरह से व्यवहार में ला सकते हैं।
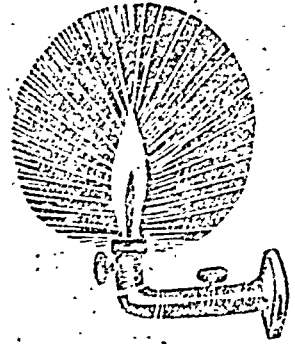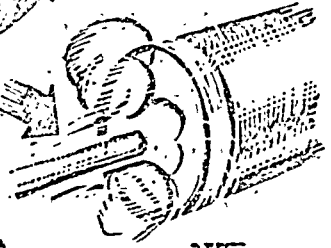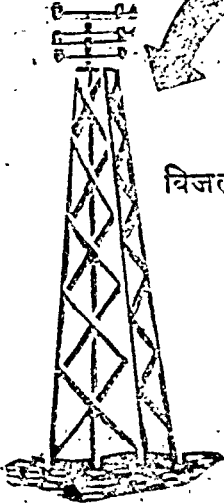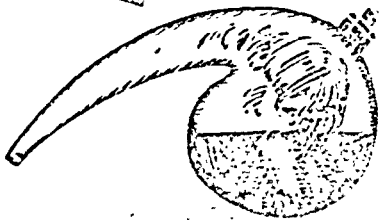
गैस
कोयला
भाफ
बिजली
रंग और केमिकल

कोयले का जीवन एक प्रकार की जलावन की शकल में शुरू होता है। जलावन तो उसी चीज़ को कहते हैं न जिसे जलाकर आदमी आग और गर्मी पैदा करता है। कोयला लकड़ी से अच्छा जलावन है। मगर आगे चलकर गैस और बिजली की गर्मी के लिए और खाना बनाने के लिए भी व्यवहार होने लगा और इन्होंने कोयले की जगह ले ली। लेकिन तब तक कोयले के लिए दो बड़े आवश्यक काम निकल आये थे यानी भाफ़ और बिजली की शक्ति पैदा करना। हम आगे चलकर देखेंगे कि आज कोयले का सबसे बड़ा काम यही है। फिर भी ऐसा मालूम होता है कि कुछ ही वर्षों में कोयले का काम बिलकुल ही बदल जायगा।

पिछले कई वर्षों में यह पता लगा है कि कोयले से अलकतरे की तरह की चीज़ें बनाई जा सकती हैं जिनसे रंग, दवाएं और दूसरे रसायनिक पदार्थ बन सकते हैं। इन दवाओं और रंगों के लिए हम हर साल ४ करोड़ रुपये विदेश भेजते हैं। अलकतरा इन चीज़ों के लिए मुख्य वस्तु है और बंगाल और बिहार में यह बहुतायत से पाया जाता है। मगर इसका अधिक भाग यों ही फेंक दिया जाता है। उदाहरण के लिए, ऐसा विचार है कि झरिया के कोयले की खानों में ३ करोड़ गैलन अलकतरा, जो मोटरस्पिरिट और मामूली तेल बनाने में बहुत उपयोगी होगा, हर साल बरबाद कर दिया जाता है।

रसायनिक पदार्थ और रंग आदि जितने ही शांति के समय में काम आते हैं उतने ही युद्ध के समय भी। जब सन् १९१४ की लड़ाई शुरू हुई तो

इंग्लैंड ९० सैकड़ो जर्मन रंग इस्तेमाल करता था। उस लड़ाई में अंग्रेजों ने यह जाना कि इतनी ज़रूरी चीज़ के लिए दूसरे देश पर भरोसा करना कितनी बड़ी बेवकूफ़ी है। इसके फलस्वरूप जब १९३९ में लड़ाई शुरू हुई तो इंग्लैंड ९० सैकड़े रंग देश में ही तैयार करता था और १० सैकड़े ही बाहर से मँगवाता था। अगर कुछ वर्षों में ही अंग्रेजों ने यह कर डाला तो हम भी कर सकते हैं। और हम लोगों को शीघ्रता करनी चाहिए क्योंकि हिन्दुस्तान में इतनी बीमारियां हैं जिनके लिए हमें दवाओं की आवश्यकता है और देश में इतना कपड़ा तैयार किया जाता है जिनके लिए रंग की आवश्यकता हैं। वास्तव में कुछ लोगों का तो कहना है कि कोयला रंग और दवाइयां बनाने के लिए इतना उपयोगी है कि यह बड़े अफ़सोस की बात है कि हम इस रसोई में, भट्टियों और रेलवे इंजनों में जलाकर नष्ट कर डालते हैं।

अच्छा तो हमारे पास यह आवश्यक खनिज पदार्थ है कितना? इस शताब्दी के प्रारम्भ से ही हम कोयला पैदा करनेवाले देशों में दिन पर दिन ऊँची जगह प्राप्त करते गये हैं और आज संसार म हमारा स्थान ९ वाँ है। हर साल १,६२,००० आदमी २ करोड़ ८० लाख टन कोयला धरती से निकालते हैं। इसका करीब $\frac{9}{10}$ हिस्सा बंगाल और बिहार की खानों से आता है। ये सूबे, जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे, जहाँ तक धरती के अन्दर की चीज़ों का प्रश्न है, बड़े भाग्यशाली हैं।

जितना कोयला निकाला जाता है यह उसके मुकाबले कुछ नहीं है जो अभी तक खानों में पड़ा है। दक्षिण की पहाड़ियों के नीचे बहुत सा कोयला दबा पड़ा है और उत्तर कोने में काश्मीर राज्य में भी कोयला अभी पाया गया है। कहा जाता है कि हमारी जमीन के अन्दर ६००० करोड़ टन कोयला है। इसके माने यह हैं कि जिस हिसाब से हम कोयला निकाल रहे हैं अगर उसी हिसाब से निकालते रहें तो २००० वर्ष से अधिक तक के लिए काफ़ी होगा।

कोयले की तरह कई और आवश्यक खनिज पदार्थ हैं जिन्हें हम ज़मीन के अन्दर से ही निकालते हैं। कोई खनिज पदार्थ जब अपने प्राकृतिक स्वरूप

में होता है और उसमें किसी भी धातु का यथेष्ट अंश होता है तो उसे कच्ची धातु कहते हैं। इस कच्ची धातु (ore) को गला कर, सच्ची धातु को उससे अलग करके ही, धातु बनती है। भिन्न भिन्न कच्ची धातु में से भिन्न भिन्न धातु निकाली जाती हैं। कुछ धातुओं से, जैसे कि लोहा, मंगनीज़ और क्रोमाइट, मशीनें बनायी जाती हैं।

जिस कच्ची धातु की हमें सबसे अधिक चिन्ता हो सकती है वह है लोहा, जिससे कि कच्चा लोहा तैयार किया जाता है और लोहे से ही इस्पात बनता है। आगे चलकर हम देखेंगे कि लोहे और इस्पात से कितना काम चलता है। यह याद रखना चाहिये कि आज के संसार में वह देश, जिसके पास लोहा और इस्पात नहीं है, जी नहीं सकता।

हिन्दुस्तान में सबसे अधिक लोहा कोयले की ही तरह, बंगाल और बिहार में ही पाया जाता है। मगर कोयले की ही तरह लोहे का भी थोड़ा हिस्सा ही हम उपयोग करते हैं। संसार की लोहे की खानों में सबसे बड़ी खान उत्तर और मध्य भारत में है। कहा जाता है कि इनमें ३०० करोड़ टन लोहा है और इससे भी अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि यह लोहा केवल परिमाण में ही अधिक नहीं, गुण में भी सर्वोत्तम है। हमारे देश के लोहे का कुछ अंश तो संसार के अच्छे से अच्छे लोहे में से है।

मगर इतना लोहा रखते हुए भी, हम दूसरे देशों के मुकाबले, वास्तव में

बहुत कम लोहा निकालते हैं। यह आपको पृष्ठ २१ के चित्र से मालूम होगा और यद्यपि हम सर्वप्रथम हो सकते थे हमारा स्थान फिर भी ९ वाँ ही है।

दूसरा आवश्यक धातु, जैसा कि आगे चलकर मालूम होगा, मंगनीज़ है। सोवियट रूस को छोड़कर हम लोग संसार में सबसे बड़े मंगनीज़ पैदा करनेवाले हैं। हमारे पास यह धातु अभी तक जितनी बच रही है उतनी दुनियां में और कहीं नहीं है। सन १९३८ में हम ९,९२,००० टन मंगनीज़ पैदा करते थे। इसमें आधे से अधिक मध्य प्रान्त में होता है। अगर आप २२ वें पृष्ठ की तस्वीर को देखिए तो समझ पायेंगे कि संसार की रसद का यह कितना बड़ा हिस्सा है।

मगर यह सारी वस्तुएँ लेकर हम करते क्या हैं? क्या हम कच्ची धातु से मंगनीज़ निकालते हैं और उसमें लोहा मिलाकर अच्छा इस्पात बनाते हैं? या हम उसे चूर्ण करके रंग छुड़ाने यानी सफेद करने के लिए ही प्रयोग करते हैं? क्या हम उससे शुद्ध करनेवाले पदार्थ तैयार करते हैं? क्या शीशे रंगने का सामान ही हम उससे तैयार करते हैं? नहीं। हम यह सब वस्तुएँ तैयार कर सकते हैं मगर करते नहीं। यह सब हमने दूसरों के लिए छोड़ रक्खा है। हिन्दुस्तान में ज़मीन से जितनी कच्ची धातु हम निकालते हैं सब जहाजों में यूरोप, अमेरिका और जापान को भेज देते हैं। और १९१७ में हम जितना भेजते थे उससे कहीं अधिक, उससे १५ गुना अधिक, अब भेजते हैं।

खेद की बात यह है कि यही हाल हमारे धरती के अन्दर के और सभी रत्नों का है। जिन वस्तुओं को दूसरे देश के लोग नहीं चाहते उन्हें हम जहां का तहां छोड़ देते हैं। जो वे चाहते हैं उन्हें हम बेच दिया करते हैं। यह और भी बुरा है क्योंकि आगे चलकर जब हमारी बुद्धि काम करने लगे और हम इनका उपयोग करना चाहें तो हमारे लिए शायद ही कुछ रह जाय। सबसे मूर्खता की बात तो यह है कि हम यह सभी वस्तुएँ आध दाम पर फेंक देते हैं।

उदाहरण के लिए, अगर हम कच्ची धातु से मंगनीज निकाल कर बाहर
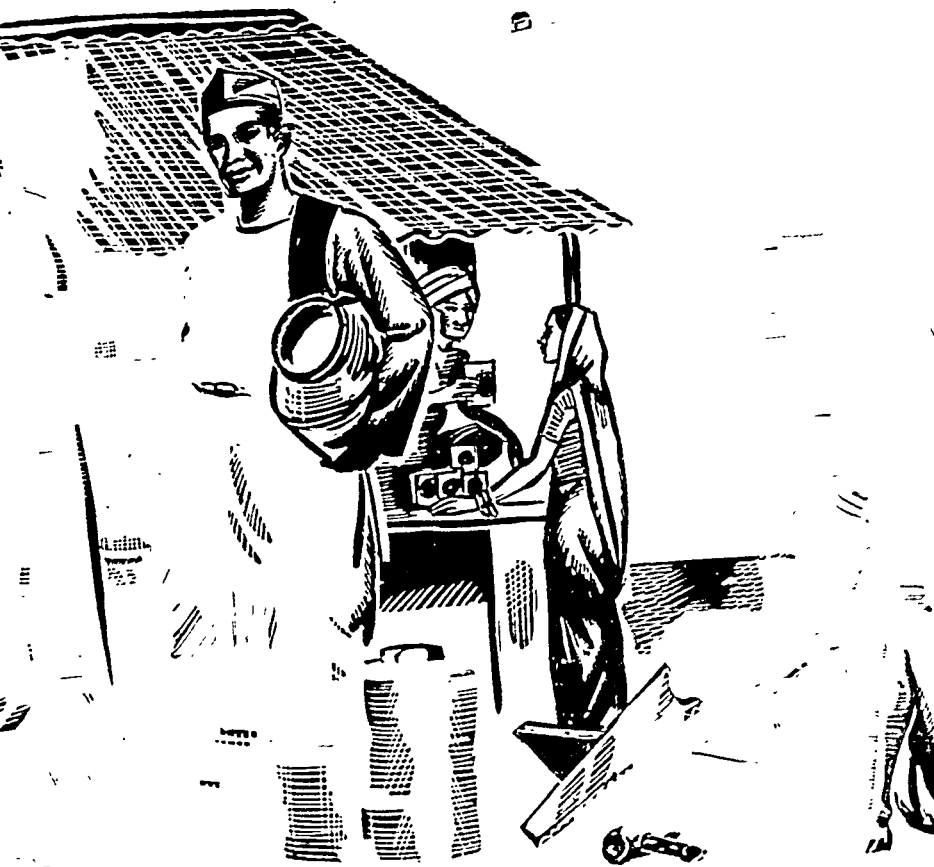
भेज़ तो लन्दन और न्यूयार्क में हमें इसके लिए काफी दाम मिलेगा। मगर हम तो कच्ची धातु को जैसा का तैसा भेज देते हैं। इस तरह मंगनीज का ही नहीं उसके साथ की बेकार चीज़ का भी यहाँ से यूरोप या अमेरिका भेजने का व्यर्थ खर्च उठाना पड़ता है। यह इस लिए कि हम इतने आलसी हैं कि अपने देश मे ऐसे भी कारखाने नहीं स्थापित कर सकते जहां कच्ची धातु से सच्ची

धातु को अलग कर लिया जाय। जो हाल मंगनीज़ का है वही और धातुओं का भी है।

हमारे देश में अबरक भी अच्छे परिमाण में पाया जाता है। संसार का अच्छे से अच्छा अबरक हमारे देश में पाया जाता है। इस वस्तु से लड़ाई के बहुत से सामान बनाते हैं। इसके द्वारा बिजली की धारा अलग कर दी जाती

है और हमें बिजली का धक्का नहीं लगता। यह वस्तु कभी कभी शीशे की जगह भी काम आती है। अभी तक अधिकतर अवरक अछूता ही पड़ा है फिर भी दुनिया के अवरक का ३/४ हिस्सा हमारे देश से जाता है। इसका श्रेय भी अधिकतर बिहार को ही है। मगर और वस्तुओं की तरह, अधिकतर अवरक भी हम इंग्लैंड और अमेरिका को भेज देते हैं।

हमारे देश में दूसरी धातुएं भी हैं यद्यपि ये उतनी अधिक नहीं हैं। हमारे पास तांबा है जिससे वे तार लगाये जाते हैं जिनके द्वारा देश भर में बिजली पहुंचायी जाती है; टीन भी है जिसमें बिस्कुट, फल और दूसरी अच्छी अच्छी चीजें बन्द होकर हमारे पास पहुँचती हैं। अलमुनियँा है जिसके हल्केपन के साथ साथ दृढ़ता के कारण हम उसे रसोई के बर्तन, बिजली के सामान और हवाई जहाज बनाने में उपयोग करते हैं; क्रोमाइट (chromite) है जिसकी ईंटों से लोहे के कारखाना की बड़ी भट्टियों के अन्दर की दीवारें बनायी जाती हैं; सोना और चाँदी है जिनसे हमारे सिक्के बनते हैं। हमारी दक्षिण सीमा पर, कुमारी अन्तरीप के आसपास के बालू में, इलमेनाइट (ilmenite) मिलता है जिससे रंग बनाया जाता है और मोनाजाइट (monazite) भी मिलता है जिससे लेम्पों के मेंटल बनाये जाते हैं। इस पृष्ट पर हमारी धातुओं से बनी कुछ वस्तुएँ आप देख सकते हैं।

मगर कहीं ऐसा न सोच लीजिए कि सभी खनिज पदार्थ धातु हैं। जैसा कि आप पहले ही देख चुके हैं धरती में कई तरह के नमक भी हैं। उदाहरण के लिए शोरा (saltpetre) को ही लीजिए। इसे नाइटर भी कहते हैं। यह अधिकतर बिहार में पाया जाता है। इसमें नाइट्रेट होते हैं। यह पुराने जमाने में बारूद और बम आदि बनाने में प्रयोग किया जाता था। अब तो इस काम के लिए कृत्रिम नाइट्रेट का प्रयोग करते हैं। साल्टपीटर को हम खाद की तरह भी उपयोग कर सकते हैं। यह न भूलिए कि जमीन को नाइट्रोजन (nitrogen) की आवश्यकता है। हमारी जमीन में फ़ासफेट (phosphate) है मगर यथेष्ट नहीं। अच्छा होता फ़ॉसफ़ेट और भी अधिक होता क्योंकि यह

बहुत बढ़िया खाद बन सकता है।

मामूली नमक, जो हम समुद्र से कितना ही पा सकते हैं, रसायनिक पदार्थों के—विशेषकर क्षार (अल्कली)—बनाने में बहुत ही आवश्यक है। अल्कली का व्यवहार हमारे काम की सभी चीजों—कागज़, चमड़ा, शीशा, साबुन इत्यादि—के बनाने में होता है। १९३७-३८ में इसकी बाहर से मंगाने में हमें एक करोड़ रुपये देने पड़े थे।

पर अब हमने एक कदम और आगे बढ़ा लिया है। बड़ौदा राज्य में मीठापुर (नमक नगर) में—जहाँ नमक और चूना बहुतायत से मिलते है—अधिकता से सोडा एश, कॉस्टिक सोडा, ब्लीचिंग पाउडर और अन्य भारी भारी रसायनिक पदार्थ तैयार किए जा रहे हैं।

इसके अलावा हमारे पास थोड़ी सी वह विलक्षण तरल धातु अर्थात् पेट्रोल है, जिससे इतनी अधिक शक्ति पैदा होती है कि तेल के कुओं पर अधिकार करने के लिए लोग लड़ाइयाँ ठान देते हैं। हमारे पास बर्मा में बहुत सा पेट्रोल है—मगर अफसोस बर्मा को हमसे अलग कर दिया गया। अब केवल आसाम में थोड़ा सा रह गया है। मगर लोग कहते हैं कि बहुत सम्भव है बलूचिस्तान, सीमा प्रान्त और पंजाब में बहुत सा पेट्रोल हो। आज कल पंजाब में जेल्हम शहर के पास एक बड़े पेट्रोल के खेत का पता चला है और वहाँ काम शुरू हो रहा है। यह खेत जेल्हम से कश्मीर राज्य की सीमा तक चला गया है। यह बड़ी अच्छी जगह पर है। इसके बीच होकर रेल भी जाती है और ग्रैंड ट्रंक रोड नाम की सड़क भी, जिनके द्वारा यहाँ से तेल हिन्दुस्तान के सभी हिस्सों में आसानी से पहुँचाया जा सकता है।

मैं तो एक धातु का नाम लेना प्रायः भूल ही गया था, यह धातु और केमिकल बनानेवाले व्यवसायों के लिए मानों कुंजी है—अर्थात् गंधक। उसके कुछ काम सुन लीजिये। गन्धक बीमारी के कीड़ों नष्ट करता है और खाल की बीमारियों में प्रयोग किया जाता है। रबड़ को दृढ़ करने में उसकी आवश्यकता होती है। किसान कीड़ों को मारने

के लिए उसका प्रयोग करते हैं। कागज़ से बनी चीज़ों और लकड़ी में मजबूती और टिकाऊपन लाने के लिए तरल गन्धक में भिगोते हैं। गन्धक तेल में मिलाकर धातुओं को काटने के लिए प्रयोग किया जाता है। घर बनाते समय, पत्थर में धातु जोड़ने के लिए सिमेन्ट में गन्धक मिलाकर लगाते हैं। वह रंग छुड़ाता है; मेज़, कुर्सियों, बेंत और पुआल की बनी चीज़ों को साफ़ करने के काम में आता है और चमड़ा तैयार करने में भी प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा केमिकल्स बनाने में इसकी बड़ी आवश्यकता पड़ती है।

गन्धक, अपनी प्राकृतिक अवस्था में, पाइराइट (pyrites) में पाया जाता है जो हिन्दुस्तान भर में जहां तहां मिलता है मगर इतने अधिक परिमाण में नहीं मिलता कि उससे अपने लिए सल्फ्यूरिक एसिड हम बना लें। यह खेद की बात है क्योंकि इंग्लैंड में सस्ते सल्फ्यूरिक एसिड के आधार पर ही वहाँ का केमिकल व्यवसाय इतनी उन्नति कर गया है। इसी लिए, इंग्लैंड में सल्फ्यूरिक एसिड का दाम एक ही पीढ़ी में ३० पाउण्ड से २ पाउण्ड फ़ी टन करना पड़ा। फिर ब्रिटिश केमिकलों और दवाइयों ने हिन्दुस्तान पर धावा बोल दिया और फिटकिरी और नाइट्रेट पैदा करने का जो थोड़ा बहुत काम हम करते थे उसका नाश कर दिया। इस तरह आज हम यूरोप को २ करोड़ पाउण्ड सालाना उन चीज़ों के लिए देते हैं जो उन्हीं खनिज पदार्थों से बनती हैं जो हमारे देश में हैं मगर यों ही पड़े रहते हैं।

हमने देखा कि खनिज पदार्थों में हम धनी हैं और लोहा, मैंगनीज़ और अबरक में हम संसार में सबसे सम्पन्न हो सकते हैं मगर पेट्रोल और गन्धक की हमारे देश में कमी है। मगर अपने पास सभी चीज़ें हों, यह कैसे हो सकता है? इसके माने यही हैं कि हमारे पास जो कुछ है उसे बढ़ाने की कोशिश करनी चाहिये। एक मिसाल लीजिये। अभी हाल में सूचना मिली है कि पाइराइट शिमला, शाहाबाद (बिहार) और रत्नागिरी (बम्बई) में पाया गया है। या इस पर विचार कीजिये। बिहार में तांबा निकलते समय जब कच्चा तांबा जलाया जाता है तो उसमें से २० टन सल्फ़र डायक्साइड गैस उड़ जाता

है। दूसरे देशों में इस गैस को यों ही उड़ जाने नहीं देते। कनाडा और फिनलैंड में इस गैस को सलफर में बदल लेते हैं। हम भी ऐसा ही कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त क्या हमें मालूम है कि हमारी ज़मीन के अन्दर क्या क्या है? असल बात है कि हम ऐसे काहिल हैं कि हमारी धरती के अन्दर के कोष में क्या क्या पड़ा है यह जानने का कष्ट भी हमसे न उठाया गया। कुछ सरकारी अफ़सर इसी काम के लिए नियुक्त हैं कि वे ज़मीन को खोद खोदकर यह पता लगायें कि उसके अन्दर क्या है। हर साल वे एक एक ज़िले का दौरा करते हैं। मगर इनकी संख्या इतनी कम है कि अभी तक वे हमारी ज़मीन के छोटे से हिस्से की ही जाँच कर पाये हैं। बाकी ज़मीन के अन्दर है हमें क्या मालूम?

यह सम्भव है कि किसी दिन अपने समाचार पत्र में आपको यह सूचना मिले कि अकस्मात आसाम में ८ करोड़ टन कोयला और ६१ करोड़ टन लोहा

पाया गया है। दूसरे दिन शायद आपका समाचार पत्र यह सूचना दे कि बहुत सारा मैगनेटाइट (magnetite)–मैगनेटाइट लोहा बड़े काम का होता है—बिहार में डाल्टनगंज के पास पाया गया है। इन बिहारियों के भाग्य बड़े अच्छे मालूम होते हैं।

१०

शक्ति

प्राचीनकाल में, जब मनुष्य की युवावस्था थी, वह पशुओं की तरह से भी काम आप किया करता था। मगर थोड़े ही समय में—कई सौ शताब्दियों के बाद—उसने लकड़ी, पत्थर और धातु के हथियार बनाने शुरू किये, जिससे वह काटने, तोड़ने या चीज़ें उठाने का काम लेता था। फिर भी सदा ये हथियार मनुष्यों के हाथ या पांव के बल से ही काम में आते थे। कुछ समय बाद मनुष्यों ने यह जाना कि वे इन कामों के लिए पशुओं का उपयोग कर सकते हैं। तो फिर उन्होंने बैलों, घोड़ों, हाथियों और कुत्तों को सीधा किया, उन्हें जोतकर उनसे भारी भारी काम लेना शुरू किया। मनुष्यों ने यह भी जाना कि वे हवा के बल से, नदियों की धारा और समुद्र की लहर से नाव या जहाज़ चलाने का काम ले सकते हैं। लेकिन बाक़ी काम, सभी परिश्रम के काम, जैसे कि पत्थर तोड़ना, पेड़ काटना, चीज़ ढोना, जानवरों या गुलामों से ही लिये जाते थे। हज़ारों वर्ष तक यही हाल रहा।

केवल सौ वर्ष हुए जब कि हिन्दुस्तान में मकान उसी तरह बनाये जाते थे, नाव उसी तरह चलायी जाती थी और लोग एक जगह से दूसरी जगह उसी तरह पहुँचाये जाते थे जैसे कि आज से हज़ारों वर्ष पहले जंगलों से आकर बसे हमारे पूर्वज किया करते थे। सन् १८०० ई० में पटना से दिल्ली जाने में एक

आदमी को उतना ही समय लगता था जितना कि अशोक और चन्द्रगुप्त के समय में लगता था।

बहुत दिनों तक कितने ही देशों के विचारकों ने किसी ऐसी शक्ति का पता लगाने की कोशिश की जो सभी तरह के यन्त्रों को चालू किया करे। मनुष्य कोई ऐसा पदार्थ खोज निकालने की कोशिश में लगा रहा जो काम करने, आने जाने और लड़ाई के साधनों में शक्ति का संचार कर सके। ऐसी कोई वस्तु जो इनके लिए रोटी का काम दे। क्योंकि रोटी आखिर है क्या? थोड़ी सी शक्ति—मनुष्य के दिमाग़, पीठ, हाथ और पैरों के लिए शक्ति। ऐसी शक्ति की मदद से लोग बहुत से परिश्रमसे बच जाते हैं। पंद्रहवीं शताब्दी का मशहूर इटालियन चित्रकार लिओनार्डो दा विन्सी, इन्हीं खोज करने वालों में से एक था। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में कुछ चतुर और बुद्धिमान पुरुषों ने यह खोज जारी रक्खी। जैसा कि आंख मिचौनी के खेल में होता है, इस कोशिश में वे अधिक से अधिक उत्तेजित होते गये।

आख़िर सन् १७६८ ई० में स्टीम इंजन का आविष्कार हुआ। यह मालूम हुआ कि अगर पानी को उबाला जाय और उसके भाफ़ को एक बेलन में इकट्ठा किया जाय तो इसके बल से वस्तुएँ चलाई जा सकती

हैं। इस तरह "पफिंग बिली" ('Puffing Billy') यानी रेलवे इंजन का आगमन हुआ। उसमें भाफ़ पिस्टन को चलाता था और उससे पहिया चलता था। इसके बाद भाफ़ से चलनेवाले जहाज़ और कारखानों में चलनेवाली मशीनें आईं। स्टीम इंजन और अधिक शक्तिशाली होते गये; यहां तक कि आज उन में से कुछ ऐसे हैं जो १५०,००० से २००,००० घोड़ों की शक्ति रखते हैं।

यह शब्द भी अजीब सा है! भला घोड़े की शक्ति के क्या माने होते हैं? मगर है यह बिल्कुल आसान---घोड़े की शक्ति के माने हैं एक मामूली घोड़े की शक्ति। लोगों का कहना है कि घोड़े की शक्ति आदमी की शक्ति की बीस गुनी होती है। तो जब मैं कहता हूँ कि स्टीम इंजन ५०,००० घोड़ों की शक्ति रखता है तो इसके माने यह होते हैं कि वह ५०,००० घोड़ों या १०,००,००० आदमियों के बराबर खींचने या ढकेलने
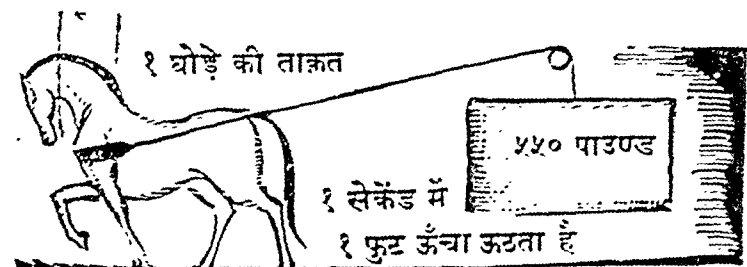
की शक्ति रखता है। यह कितनी बड़ी बात है! मनुष्यों को १०,००,००० नये काम करनेवाले मिल गये और सबके सब एक स्टीम इंजन में ही! और ज़रा १०,००,००० आदमियों को खिलाने की तो बात सोचिये! मगर आपको यह करना नहीं पड़ेगा। एक स्टीम बॉयलर (boiler) को खिलाने के लिये केवल थोड़े पानी और कोयले की आवश्यकता होती है।
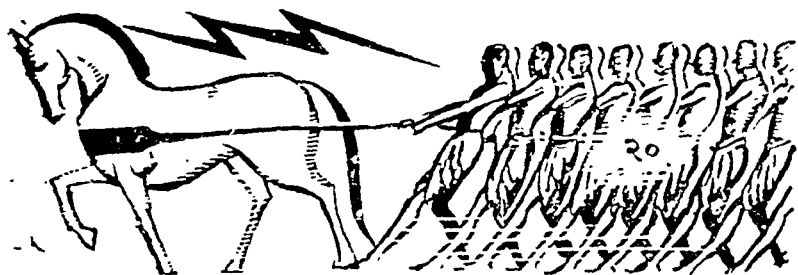
मगर मनुष्य को इस आश्चर्यजनक सफलता से सन्तोष नहीं हुआ। मनुष्यों में एक ज्योतिशिखा है। इसे 'दैवी-असन्तोष' का नाम दिया गया है। १८८० के लगभग यह ज्योतिशिखा जल उठी थी और इसके कारण तेलवाला इंजन पैदा हुआ। इस तेल के इंजन में, भाफ इकट्ठा करने के बदले, हम तेल और हवा मिलाकर बेलन में बन्द कर देते हैं। तब उसमें आग लगा दी जाती है और फिर धड़ाके की आवाज़ के बाद पिस्टन चलने लगता है।

तेल का इंजन स्टीम इंजन से शक्तिशाली और सस्ता निकला। उसने स्टीम इंजन की जगह लेना शुरू किया। कारखाने और जहाज़ चलाने, पानी खींचने, बिजली पैदा करने में भाफ अभी तक तेल की बराबरी कर रहा है। मगर तेल भाफ़ से आगे बढ़ता जा रहा है। जिस तरह भाफ़ ने रेलवे और स्टीम से चलाये जानेवाले जहाज़ पैदा किये उसी तरह तेल ने मोटर गाड़ी और हवाई जहाज़ को जन्म दिया।

और अब यह मानव क्या कर रहा है? उसका विकल मस्तिष्क शक्ति के किसी दूसरे निराले साधन की खोज में लगा है। बुद्धिमानी भी यही है क्योंकि मनुष्य को अधिकाधिक शक्ति की आवश्यकता मालूम होती है। मगर जिन वस्तुओं से शक्ति पैदा की जाती है वह तो थोड़े ही परिमाण में हैं।

इस लिये मनुष्य फिर लौट कर अपने शैशव के मित्र जल के पास पहुँचा है। धातुओं पर अधिकार कर लेने और बड़े बड़े चक्के और लम्बे लम्बे तार बना लेने के बाद, अब वह समझ पाया है कि उसने एक असली दानव को

हाथ में कर लिया है। तो अब हमारे आपके समय में इन पुरानी चीजों (fossils) से शक्ति लेने का युग समाप्त होने पर आ गया है। इन पुरानी दबी दबाई धरती के अन्दर पड़ी हुई चीज़ों को अंग्रेजी में "फासिल्स" (fossils) कहते हैं, जैसे कि कोयला या तेल। तभी तो आज के तेज़ युवक युवतियाँ कभी अपने माँबाप को "प्रिय पुरातन जड़ पदार्थों" (dear old fossils) की उपाधि दे दिया करते हैं।

हाँ, तो इस जलरूपी दैत्य पर अधिकार कैसे पाया जाय? पहाड़ों से पानी झरने की शकल में नीचे गिरता है और फिर नदियों का रूप लेता है। झरना जहाँ गिरता है अगर वहाँ उसे अधिकार में कर लिया जाय तो उसमें बहते हुए पानी का पूरा बल मिलता है। किसी भी पहाड़ की चोटी पर जलाशय में पानी जमा करके अगर बड़े बड़े नलों से नीचे ज़ोर से गिराया जाय तो इसी तरह की शक्ति उत्पन्न की जा सकती है। वहाँ पर उसके द्वारा बड़ी बड़ी पनचक्कियाँ चलाई जा सकती हैं। ये पनचक्कियाँ डाइनमो को चालू करती हैं और डाइनमो विद्युतशक्ति पैदा करता है। यह शक्ति (विद्युत धारा) तारों के द्वारा दूसरे छोटे छोटे डाइनमो चलाने के लिए जा सकती है जो चीज़ों को उठा या हटा सकती हैं और वह सब काम कर सकती हैं जो कोयले या तेल ने किया है। पानी की शक्ति से ही नहीं; कोयले और तेल के द्वारा भी बीजली पैदा की जा सकती है। कोयला और तेल तो समाप्त हो सकता है मगर आज तक पृथ्वी का घूमना, सूरज का चमकना और पानी का बरसना नहीं रुकता तब तक जलशक्ति मिलती रहेगी।

बिजली कोयले और तेल से सस्ती होती है और उसके समाप्त होने का भी प्रश्न नहीं उठ सकता। इसके अलावा उसे तार के द्वारा काफ़ी दूर ले जाया जा सकता है। अब तो उसे २०० या ३०० मील तक पहुँचाया जा सकता है। अमेरिका में नायगरा जलप्रपात से बिजली की धारा ४५० मील दूरी की पर न्यूयार्क पहुँचायी जाती है। इस कारण अब तो केवल पृथक वस्तुएँ ही, जैसे जहाज़, हवाई जहाज़ और मोटर गाड़ी, तेल या कोयले का प्रयोग करती हैं।

अन्य देशों की तरह हिन्दुस्तान में भी यह शक्ति पैदा करने का सिलसिला समान अवस्था से गुज़रा यद्यपि यहाँ सभी बातें कुछ देर करके हुईं। हम लोग
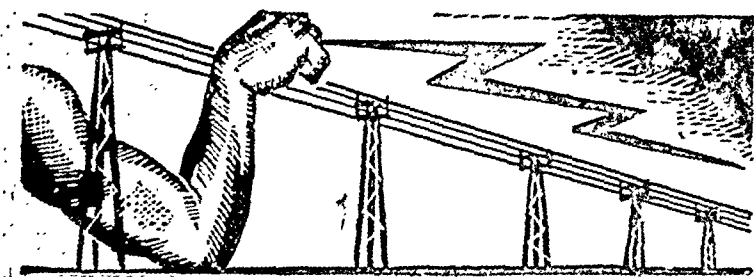
बिजली के युग में अब पैर रख रहे हैं। अगर आप देश में रेल या मोटर की सैर करें तो जहाँ तहाँ खेतों की हरियाली के बीच लोहे के ऊँचे ऊँचे चार पैर और कई हाथ वाले मस्तूल देखेंगे। इन्हीं हाथों में ताँबे के तार लगे होते हैं जिनके द्वारा बिजली दूसरी जगह पहुँचाई जाती है।

एक तिहाई हिस्सा बिजली पानी की शक्ति से बनती है। बम्बई और मद्रास के सूबों में पानी से शक्ति पैदा करने के बड़े बड़े स्थान हैं। सबसे बड़ा स्थान बम्बई में है। यहाँ ताता कम्पनी ने पश्चिमी घाट की पहाड़ियों के ऊपर जलाशय बना रक्खे हैं। इन जलाशयों से पानी बड़े बड़े नलों द्वारा पहाड़ से १६०० फ़ीट नीचे गिराया जाता है और वहाँ २३०००० घोड़ों की शक्ति की बिजली पैदा की जाती है। इसी शक्ति से बम्बई शहर में रोशनी होती है, ५३ सूती कारख़ाने चलते हैं, ट्राम गाड़ियाँ चलती हैं और वहाँ से एक ओर पूना तक, और दूसरी ओर इइतपुरी तक रेल गाड़ियाँ आती जाती हैं। पानी से शक्ति पैदा करने का दूसरा केन्द्र दक्षिण भारत में है। वहाँ कावेरी नदी के जलप्रपात का प्रयोग किया जाता है। इस बिजली के भंडार से और चीज़ों के अलावा, मैसूर राज्य की कोलर नाम की सोने की खान भी चलती है।

ये जलशक्ति के केन्द्र 'ग्रिड सिस्टम' (grid system) पर काम करते हैं यानी आसपास के स्टेशनों को एक मान कर, तारों के जाल से सब की

इकट्ठा शक्ती का उपयोग किया जाता है और एक दूसरे की कमी पूरी करते हैं। इस तरह के पाँच ग्रिड केन्द्र हिन्दुस्तान में काम कर रहे हैं जिनसे ६००,००० घोड़ों की शक्ति की बिजली पैदा की जा सकती है। ये बम्बई, मद्रास, मैसूर, युक्तप्रान्त, पंजाब और सीमाप्रान्त में हैं। आज जलशक्ति का प्रयोग करके हम सन् १९१५ ई० के मुकाबले १५ गुना अधिक शक्ति पैदा करते हैं।

पूर्व हिन्दुस्तान में जलशक्ति उतनी अधिक नही मिलती। इस कारण वहाँ कोयले का प्रयोग करते हैं। कलकत्ते में कोयले से वहीं पैदा की गयी बिजली की शक्ति से रोशनी होती है। और ऐसा ही बिहार में जमशेदपुर के लोहे और इस्पात के कारखाने में भी होता है। इस समय बिहार में गया और जमुनियातंद में, जहाँ अभी कोयला प्रयोग किया जाता है, दो बड़े पानी से शक्ति पैदा करने के स्टेशन बन रहे हैं। हर एक से २२,००० घोड़ों की शक्ति की बिजली पैदा की जा सकेगी और दोनों एक ग्रिड की तरह काम करेंगे।

आखिर हम कुल कितनी बिजली का प्रयोग करते हैं? ऐसा विचार है कि प्रायः १५,००,००० घोड़ों की शक्ति की बिजली हिन्दुस्तान में प्रयोग की जाती है। यह लगता तो बहुत है मगर दूसरे छोटे छोटे देशों से तुलना की
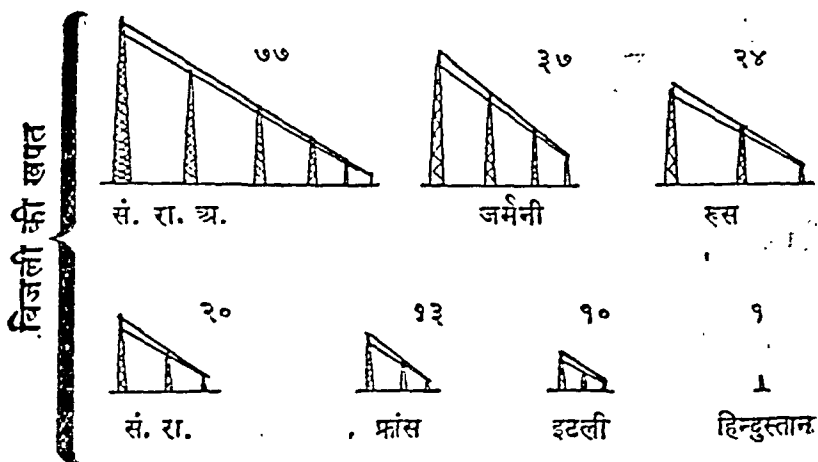
जाय तो असलीयत का पता लगे। इस चित्र से आप कुछ जान सकेंगे। हम दूसरों से कितने पिछड़े हैं शायद इसे आप अधिक अच्छी तरह समझ सकें अगर हम आपको यह बतायें कि नॉरवे में जलशक्ति से ही हर १००० लोगों के

हर हज़ार आदमियों के हिस्से में घोड़ों की ताक़त

लिए ७०० घोड़ों की शक्ति की बिजली, कनाडा में ६०० घोड़ों की शक्ति की, स्विट्ज़रलैंड में ५०० घोड़ों की शक्ति की, स्वीडेन में २०० घोड़ों की शक्ति की और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में १०० घोड़ों की शक्ति की बिजली मिलती है। और हिन्दुस्तान में? १००० आदमियों के लिए १ घोड़े की शक्ति से कुछ ही अधिक!

यह जानकर तबीयत बहुत छोटी हो जाती है। मगर इसमें आश्चर्य ही क्या? आप ज़रा सोचिये तो कि हमारे पास कितनी कम फैक्टरियां हैं; हमारी प्राय: सभी ट्रेनें भाफ़ के इंजिनों द्वारा खींची जाती हैं; बड़े बड़े शहरों को छोड़कर बिजली बत्ती का नामोनिशान नहीं है और शहरों में भी बहुत थोड़े लोग टेलीफोन या रेडियो सेट का प्रयोग करते हैं। हम इतनी कम बिजली इस लिए प्रयोग करते हैं क्योंकि हम बिजली से काम लेना नहीं जानते।

तो क्या हम चाहें तो अधिक शक्ति पैदा कर सकते हैं? क्यों नहीं कर सकते? थोड़ा ही अधिक क्यों, सौ गुना अधिक शक्ति हम पैदा कर सकते हैं।

कनाडा और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को छोड़ कर हिन्दुस्तान के पास संसार में सबसे अधिक जलशक्ति है--प्रायः २७० लाख घोड़ों की शक्ति की, जहां कनाडा में ४३० लाख और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ३५० लाख घोड़ों की शक्ति की जलशक्ति है। और आपका क्या विचार है, उसमें कितना हम प्रयोग करते हैं? ५० वें हिस्से से भी कम! हम जितना प्रयोग कर सकते थे उसका ५० वाँ हिस्सा ही करते हैं मगर संयुक्त राष्ट्र, फ्रांस और जापान अपनी शक्ति का एक तिहाई प्रयोग करते हैं। जर्मनी आधे से कुछ अधिक और स्विट्ज़रलैंड--इन छोटे छोटे राष्ट्रों ने ही सारी बुद्धि बटोर रक्खी है! क़रीब-क़रीब तीन चौथाई प्रयोग करता है।

कुछ दिन हुए एक अंग्रेज इंजिनीयरने "सुखी भारत" (Happy India) नाम की एक पुस्तक लिखी थी। उसने हमारी शक्ति और सामग्री का और भी आशाजनक चित्र खींचा था। हमारी जलशक्ति का हिसाब उसने इस तरह लगाया था। हिमालय और हमारे दूसरे पहाड़ों की लम्बाई उसने ३००० मील आंकी थी। एक क्यूबिक फुट पानी १ मिनट में अगर १००० फ़ीट गिरे तो, उसके विचार से, २ घोड़ों की शक्ति पैदा कर सकता है। इससे उसने यह हिसाब लगाया कि प्राकृतिक जलप्रपात और नदियों से कुल १५ करोड़ की शक्ति निकलती है। मगर यह तो बहुत बढ़ा चढ़ा अनुमान है क्योंकि यह सारा का सारा पानी न तो इकट्ठा किया जा सकता और न तो कम खर्च में बिजली का रूप ही इसे दिया जा सकता है। मगर इससे हमारी पर्वत-शृंखला की महती शक्ति का पता लगता है।

जब हमें प्रकृति की इतनी सहायता प्राप्त है तो हम क्या नहीं कर सकते? जो वस्तुएँ हमें चाहिएं उन्हें बनाने के लिए हम बड़े बड़े कारखाने स्थापित कर सकते हैं। हम गाँवों में बिजली पहुँचा सकते हैं और केवल किसानों की झोपड़ियों में बिजली की रौशनी ही नहीं कर सकते हैं वरन् पानी खींचने के
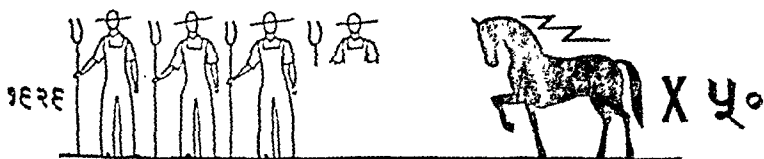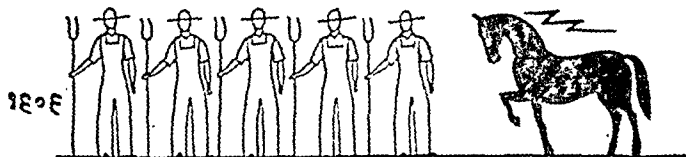
लिए बिजली के पम्प और पीसने, दबाने और छांटने के लिए बिजली की मशीनें, प्रयोग करना भी उन्हें सिखला सकते हैं। सामने की तस्वीर से आपको मालूम होगा कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में कृषि के लिए कितनी बिजली का प्रयोग होता है। इसमें एक आदमी खेत पर काम करने वाले १० लाख आदमियों के बराबर माना गया है और हर एक घोड़ा ५० लाख घोड़ों की शक्ति के लिए आया है।

अपने देश के लोगों के जीवन में कुछ आनन्द लाने के लिए हम लोग उनमें रेडियो, ग्रामोफ़ोन, टेलिफ़ोन, और सिनेमा का प्रचार कर सकते हैं। रेडियो पर स्कूलों के काम के प्रोग्राम अधिक रहा करेंगे और देहात का बच्चों का विचार

करके ये सब अँग्रेजी में न होकर हिन्दुस्तानी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में होने चाहियें। और यह सब करने के बाद भी अगर हमारे पास कुछ बिजली बच रहेगी तो हम उसके ज़रिए 'नाइट्रोलिन' (nitrolin) तयार करने के लिए हवासे नाइट्रोजन निकालेंगे। नाइट्रोलिन ज़मीन को उपजाऊ बनाने के लिए बहुत काम की चीज़ है।

यह सब करने के लिए हमें बहुत सी बिजली की मशीनें चाहियें। आज कल तो हम वह सब यूरोप और अमेरिका से मँगवाते हैं। १९३८-३९ में हमने ऐसी मशीनों के लिए ३७० लाख रुपये खर्च किये। मगर वह चीज़ें हमें सस्ते दाम म देना ही होगा। और उसका उपाय एक ही है यानी इस देश में ही यह सब चीजें बनाना शुरू कर दें।

जब हम यह सब कर लेंगे और अपनी सारी जलशक्ति और अपना बचा बचाया कोयला व्यय कर चुके होंगे—तब तक तो हम सबसे धनी राष्ट्र हो जायँगे—तो हमारे सामने समुद्र की लहरों की शक्ति को काम में लाने का प्रश्न आयेगा। हम लोग सूर्य की प्रकाश देनेवाली शक्ति पर भी अधिकार करेंगे। एक छोटी बिजली की मोटर तो, सुना है, सूर्य की रोशनी से चलायी जा रही है। और फिर आपने कभी यह भी सोचा है कि गहरा छेद करके हम पृथ्वी के पेट से उसकी सारी गर्मी निकाल सकते है? इटली के लदारेला (Ladarella) स्थान में भाफ़ ज़मीन के अन्दर से निकाला जाता है और उससे ४००० घोड़ों की शक्ति की बिजली पैदा की जाती है। तो हम क्या नहीं कर सकते?

११
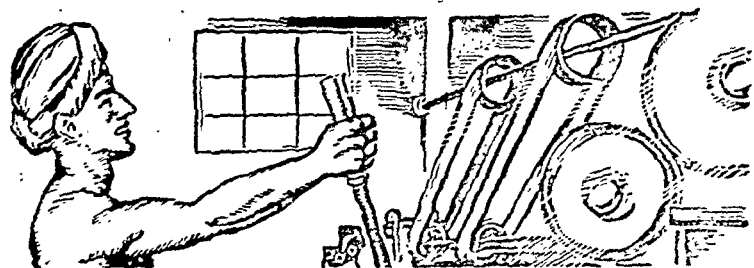
फ़ौलाद के आदमी

क्या आपको मालूम है, कि सोवियट रूस के तानाशाह (dictator) को स्टालिन क्यों कहते हैं ? यह उनका नाम नहीं हैं, उनका नाम तो जोसेफ जुगाशविलि (Josef Djugashvili) है। उन्हें स्टालिन का नाम इस लिये दिया गया है क्योंकि वे फ़ौलाद की तरह दृढ़ हैं। रूस में " स्टालिन " के माने फ़ौलाद का आदमी हैं।

मगर रूस में और भी फ़ौलाद के आदमी हैं, हज़ारों की संख्या में, और वे उतने ही उपयोगी हैं जितने कि ये तानाशाह। फिर वे इतना परेशान भी नहीं करते! यही हालत और देशों की भी है। इन लोगों को हम मशीन का नाम दिया करते हैं। ये फ़ौलाद के बने होते हैं और आदमियों का काम करते हैं--हाँ, उनसे भी अच्छी तरह, उनसे भी तेज़ी के साथ।

जिस देश में ज़मीन के अन्दर बहुत से खनिज पदार्थ हों, जिनमें लोहा और अन्य धातुएँ पाई जाती हों और जहाँ पानी और कोयले की तरह, वस्तुएँ प्रचुरता के साथ पाई जायँ वह आसानी से बहुत अधिक मशीनें बना सकता है। मशीनें धातु की बनी होती हैं और बिजली की शक्ति से चलाई जाती हैं।

हमारे दुर्भाग्य से हिन्दुस्तान इन देशों में नहीं है। जैसा कि हमने देखा है हम लोगों के पास धातुएँ प्रचुर मात्रा में हैं। असल में तो संसार में लोहे

का सबसे अच्छा कोष हमारे देश की ज़मीन के अन्दर है। हमारे पास कोयला भी काफ़ी है और जलशक्ति की तो कमी ही नहीं है।

फिर भी, जैसा कि हमने पिछले अध्याय में देखा, अपनी सूती मिलों और बिजली के कारखानों के लिये मशीनें हम बाहर से मँगवाते हैं; प्रायः सभी मशीनें हम बाहर से मँगवाते हैं। साल में कुछ १३ या १४ करोड़ रुपये की मशीनें हम विदेश से मँगवाते हैं। यह क्यों, इतनी छोटी २ चीजें जैसा कि आलपीन, पेंच या सुईयाँ भी तो हम बाहर से मँगवाते हैं। जहाँ तक मोटर गाड़ी, बडे जहाज़ या हवाई जहाज़ बनाने का प्रश्न है, एक दो साल पहिले तो हमारे मस्तिष्क में इसका विचार तक नहीं पैदा हुआ था, और अब भी तो हम इस पर बातचीत ही कर रहे हैं।

आप पूछेंगे--आखिर हमारा सारा का सारा लोहा क्या हो जाता है? करीब पचास वर्ष पहिले तक, जैसा कि मंगनीज धातु के लिये अब भी सच है, हमारा सारा का सारा लोहा दूसरे देशों को भेज दिया जाता था। मगर कुछ दिनों से यह मूर्खता हम लोगों ने बन्द कर रक्खी है। इसकी कहानी यह हैं। इस शताब्दी के आरम्भ में ही जमशेदजी ताता नाम के एक बड़े दूरदर्शी हिन्दुस्तानी ने यह अनुभव किया कि जिन वस्तुओं की हमें आवश्यकता है उन्हें हम तब तक स्वयं कभी नहीं बना सकेंगे जब तक कि हम उन वस्तुओं को बनाने वाली मशीनें बनाना न सीख लें। वह कहते थे कि जब तक हम
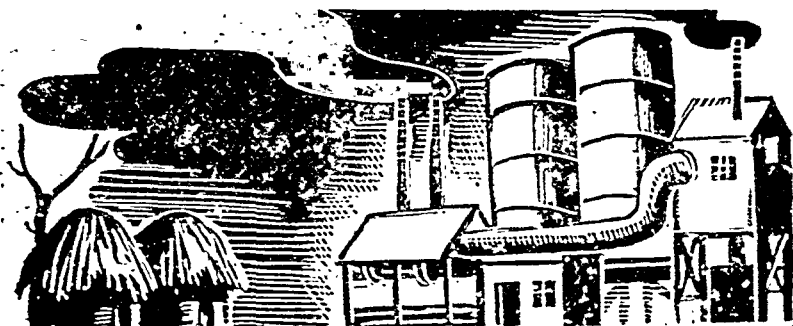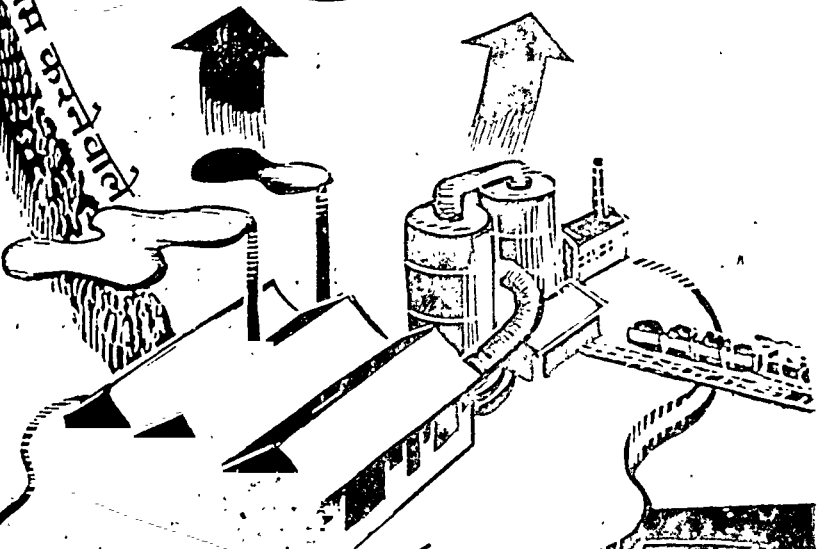
१२,००,००० टन
सूअर लोहा
१०,००,००० टन
फ़ौलाद
काम करनेवाले
जमशेदपुर
लोहा
ताँबा
अलमुनियम
चूना
डोलोमाइट

अपने देश में भी लोहा और फ़ौलाद पैदा करना शुरू न कर दें, तब तक हम ये मशीनें कभी नहीं बना पायेंगे।

इस नये व्यवसाय के स्थापित करने के लिये जगह ढूंढ़ते ढूंढते वे बिहार के सबसे अधिक जंगल वाले हिस्से के एक गांव में जा पहुँचे। इस गाँव का नाम साकची था। साकची नाम था पर अब नहीं हैं। अब उसका नाम जमशेदपूर है। और अब वह ऐक गाँव भी नहीं रह गया है। मानों रातों रात वह जंगल का छोटा सा गाँव १४०,००० की जन संख्या वाला बड़ा शहर बन गया। मगर यह हुआ कैसे?

मेरी एक छोटी सी अच्छी सी सखी हैं। वह कहती है—बहुत दिन हुए, जब जंगली जातियाँ ज़मीन और भोजन की खोज में एक जगह से दूसरी जगह घूमती फिरती थीं, उन्होंने पड़ाव डालने या मकान बनाने के लिए जगह ठीक करने का काम ओझाओं के सिपुर्द कर दिया था, जिनका दावा था, कि ऐसे निर्णय करने में उन्हें देवता या प्रेत सहायता दिया करते थे।

जमशेदजी ताता ऐसे ही जादूगर थे। उन्होंने एक ऐसी जगह खोज निकाली, जिसके आसपास की ज़मीन के अन्दर वह सभी चीजें थी,—कोयला, लोहा, ताँबा, अलमुनियाँ, अबरक, चूना और डोलोमाइट जिनकी कि एक धातु के कारख़ाने को आवश्यकता हो सकती है। एक और लाभ यह था कि यह स्थान कलकत्ता से नागपूर और बम्बई की रेलवे लाइन पर पड़ता था और उन जलमार्गों के भी समीप था जो कलकत्ते को जाते हैं। काम करने के लिये छोटा नागपुर के मेहनती लोग थ जो काम बहुत करते हैं मगर जिन्हें खाने और पहिनने को कम चाहिए।

इस तरह, गर्द के बादलों और कान फाड़ने वाली लोहे की खड़खड़ाहट के बीच साकची नाम का गाँव, लोहे का शहर, हिन्दुस्तान का पिट्सबर्ग बन गया। पिट्सबर्ग, शायद आपको न मालूम हो, अमेरिका के लोहे के व्यवसाय का सब से बड़ा केंद्र है।

आज ताता का कारख़ाना ब्रिटिश साम्राज्य में फ़ौलाद का सबसे बड़ा

कारखाना है और संसार के बारह बड़े बड़े कारखानों में से एक है। इसमें ५०,००० आदमी काम करते हैं और १९३९ से साल में १२,००,००० टन लोहा और १०,००,००० टन फ़ौलाद बनाते हैं। आइये हम आपको बतायें यह सब वस्तुएँ हैं क्या ?

धातुएँ ज़मीन के अन्दर ढेलों की शकल में नहीं मिलती। पत्थर या मिट्टी के तुकड़ों को जिन्हें कच्ची धातु कहते हैं, गलाकर वे निकाली जाती हैं। लोहे की धातु को बड़ी बड़ी भट्टियों में रख दिया जाता है। इनकी गर्मी से पिघल कर लोहा बहने लगता है। फिर सुअर की शकल के ढाँचों में उसे ठंडा होने के लिये डाल दिया जाता है। इस कारण ऐसे साधारण लोहे को अंग्रेजी में "सुअर लोहा" (pig-iron) कहते हैं। लोहे में कार्बन मिला कर और फिर उसमें मंगनीज़ आदि की तरह की वस्तुएँ फेंट कर फ़ौलाद या इस्पात बनाया जाता है ! इस तरह उसमें अधिक दृढ़ता आती है और उसे पीट पाट कर किसी भी शकल की वस्तु बनाने में आसानी होती है।

बहुत दिन नहीं हुए जब लोहे से छोटी छोटी वस्तुएँ ही बनायी जाती थीं। १७७९ में सबसे पहले इंग्लैंड में सेवर्न नदी के ऊपर लोहे का पुल बना। उस समय से संसार बहुत आगे बढ़ गया है। एक तो यही बात है कि फ़ौलाद अधिकतर लोहे की जगह लेता जा रहा है। कारण यह है कि वह अधिक मज़बूत भी होता है और टिकता भी अधिक है। पुलों के लिए एक तरह का फ़ौलाद प्रयोग करते हैं और चक्कों के लिए दूसरे तरह का। कुछ तरह के फ़ौलाद दूसरे से अच्छे होते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जिनमें न दाग़ लगता है न ज़ंग। कार्बन और मंगनीज़ को भिन्न-भिन्न मात्रा में लोहे में मिला कर ये तरह तरह के फ़ौलाद तैयार किये जाते हैं।

फ़ौलाद ही से वे विचित्र मशीनें बनायी जाती हैं जो एक बटन दबाते ही कैसे कैसे काम कर दिखाती हैं। एक मशीन ऐसी है जिसमें एक तरफ़ से लोहे की छड़ें डाल दी जाती हैं और दूसरी तरफ़ उसमें से हज़ारों की संख्या में पेंच बोल्ट और इसी तरह की चीज़ें बनकर निकलती जाती हैं। दूसरी

मशीन ऐसी है जिसमें आप गोल लकड़ी डाल दीजिए और सफ़ाई से छोटे छोटे बक्सों में बन्द दियासलाई ले लीजिये। तीसरी मशीन ऐसी है जिसमें तम्बाकू और कागज़ डाल दिये जाते हैं और सिगरेट बनकर आ जाते हैं। और आप तो जानते ही हैं कि फ़ौलाद की कितनी ही और चीज़ें बनती हैं जैसे कि बाईसिकिल, टाइपराइटर और सीने की मशीन।

लोहे और फ़ौलाद की बात करते करते हम जमशेदपुर से बहुत दूर चले आये हैं। मगर आप तो यह जानना चाहते होंगे कि क्या ताता के कारखाने से हमें जितना लोहा और फ़ौलाद चाहिये मिल जाता है ?

इसका उत्तर सदा की नाई यही है—'नहीं'। जो हालत रूई और कपड़े की है वह इसकी भी है। मालूम होता है हम लोग अधूरा काम करना पसन्द करते हैं, उसे समाप्त करके अधिक लाभ हथिया लेने का काम दूसरों के लिए छोड़ देते हैं। जो लोहा हम पैदा करते हैं उसका अधिक हिस्सा इंग्लैंड और दूसरे देशों को भेज देते हैं और फिर उनसे अपने लोहे की बनी चीज़ें ख़रीदते हैं।

यह सब सरासर ग़लत है। हमारी धरती के अन्दर इतना लोहा पड़ा हो और हम दूसरे देशों को फ़ौलाद और मशीनों के लिए रुपये भेजें! और सभी देश ऐसे बेवक़ूफ़ थोड़े ही हैं। जर्मन लोग अपनी ज़मीन से हर साल ३० लाख

टन लोहा पैदा करते हैं। उस लोहे से और फ्रांस और स्वीडेन से लोहा लेकर वे २ करोड़ ३० लाख टन फौलाद तैयार करते हैं। हम लोग भी २० लाख टन लोहा पैदा करते हैं मगर १० लाख टन से भी कम फौलाद तैयार करते हैं।

यह बात नहीं है कि हम हिन्दुस्तानी धातुओं से चीजें बनाना जानते ही नहीं थे। दिल्ली में एक १५०० वर्ष पुराने लोहे का स्तम्भ है और सुल्तानगँज में भी बुद्ध की बहुत बड़ी मूर्ति है। इससे मालूम होता है कि सैकड़ों वर्ष पहले हिन्दुस्तान के लोग धातुओं से बड़ी बड़ी वस्तुएँ अधिक बनाना जानते थे। उस समय युरोप वाले, तलवार और छुरियां बनाने के सिवा, फौलाद के अन्य प्रयोग नहीं जानते थे!

हम लोगों के पास जितना अधिक और बढ़िया लोहा है जब हम उसका विचार करते हैं तो कारण नहीं मालूम होता कि जर्मनी के बराबर फौलाद क्यों न तैयार करें, जो हमारे देश से कहीं छोटा है और जिसके पास जितना लोहा हमारे पास है उसका एक छोटा सा हिस्सा भी नहीं है, और जो स्वीडन और फ्रांस से लोहा खरीद कर अपनी आवश्यकता पूरी करता है। इसके माने यह हैं कि जमशेदपुर के कारखानों को कई गुणा बढ़ना चाहिए।

कुछ थोड़ा काम हो रहा हैं मगर इतने से काम नहीं चलने का। अभी हाल में एक नई भट्टी और बैठाई गई है। इससे १००० टन रोज की पैदावार है। इस समय पाँच भट्टियाँ जोरों से चल रही हैं। लिखते समय की खबर है कि एसिड फौलाद (acid steel) नये तरीके से बनाने के लिए एञ्जिन वाली एक नयी मशीन लगायी जा रही है। बिजली पैदा करने के लिए एक नयी मशीन लगायी जा रही है। इन सब कामों के हो जानेपर टाटा कम्पनी यह आशा करती है कि २ वर्ष बाद हर साल १०½ लाख टन फौलाद पैदा कर लेगी, जब कि १९३३ में केवल १० लाख टन पैदा किया था। आप सन्तुष्ट हो गये? मगर मुझे तो सन्तोष नहीं हुआ। यह न भूलिये कि जर्मनी २ करोड़ ३० लाख टन फौलाद पैदा करता है।

मान लीजिये कि कुछ वर्षों के बाद हम आज से बहुत अधिक फ़ौलाद पैदा करने लग गये तो हम उसको ले कर क्या करेंगे ? हम लोग मशीनें बनायेंगे—बिजली पैदा करनेवाली मशीनें, ऐसी मशीनें जो कारखानों को चलती हैं और कपड़ों और जूतों की तरह की चीज़ें बनाती हैं, चलने फिरनेवाली मशीनें, जैसे कि रेलवे एँजिन मोटरगाड़ी, जहाज़, हवाई जहाज़, बाइसिकिल और ट्रैक्टर, और ऐसी, छोटी छोटी चीज़ें जैसे कि फरसा, पेंच, हथौड़ी, बोल्ट और आलपीन। जिन कारखानों में ऐसी मशीनें बनती हैं उन्हें इंजिनियरी कारखाने कहते हैं।

क्या हम इनमें से कोई भी चीज़ अभी तैयार करते हैं ? क्या हमारे देश में इंजिनीयरी व्यवसाय है ? नहीं। ताता के कारखाने में एक कृषि विभाग है, जिसे 'अग्रिको' कहते हैं और जिसमें १०½ लाख फरसे, १½ लाख हथौड़ियां और ९½ लाख फावड़े हर साल तैयार होते हैं। उन लोगों ने चक्के और धुरियाँ बनानें वाली मशीनें भी लगायी हैं। यहाँ वहाँ कुछ थोड़े से छोटे मोटे कारखानों को छोड़कर जो कुछ है यही है !

आख़िर हम फ़ौलाद से मशीनें कहाँ और कैसे बनायें ? इस प्रश्न का उत्तर कुछ विशेषज्ञों ने दिया है। यह लोग इस विषय का अध्ययन करते रहे हैं। उनका कहना है कि हमें दो कारखाने स्थापित करने होंगे और मशीनें बनाने का काम इन दोनों कारखानों के बीच बाँट देना होगा। एक तो बड़ी मशीनें बॉयलर (boiler) रेलवे एंजिन और माल गाड़ियाँ बनायेगा; दूसरा, मोटर गाड़ियाँ और बसें, ट्रैक्टर और अन्य कृषि सम्बन्धी मशीनें, बाइसिकिलें, हवाई जहाज़, जहाज़ और सूती मिलों के लिए मशीनें, इस्पात के मेज़ कुर्सी (furniture), छुरियाँ और काँटे और दूसरी छोटी वस्तुएँ बनायेगा। इस तरह एक कारख़ाना भारी काम और दूसरा कुछ हल्का काम करेगा।

ये कारख़ाने कहाँ पर स्थापित किये जाने चाहिये ? भारी काम करनेवाला कारख़ाना तो, ये विशेषज्ञ कहते हैं, बिहार में कहीं जमशेदपुर के आसपास

होना चाहिये। इसका कारण तो साफ़ है? सबसे मुख्य तथा सबसे भारी वस्तु जिसकी ऐसे कारखाने को आवश्यकता होगी वह है इस्पात। इस कारण जमशेदपुर के जितना ही समीप यह स्थान होगा उतना ही कारखाने में इस्पात पहुँचाने का खर्च कम होगा।

और वह हल्के कामोंवाला कारखाना कहाँ पर होगा? बम्बई में। पता नहीं आप इसका कारण समझ पायेंगे या नहीं। ज़रा देखें तो आपका उत्तर विशेषज्ञों के उत्तर से मिलता है या नहीं। बम्बई में पानी की कमी नहीं है और ताता के वॉटरवर्क्स से सस्ती बिजली भी मील जाती है। यहाँ की जल-वायु साल भर मोतदिल रहती है। अगर मोटर गाड़ी या जहाज़ के कोई छोटे मोटे पुर्ज़े यूरोप या अमेरिका से मंगवाने पड़ें तो बम्बई ही तो भारत का द्वार है? इसके अलावा मोटर गाड़ियों, जहाज़ तथा सूती मिलों के लिए बड़ा अच्छा बाज़ार पास में ही, बम्बई और अहमदाबाद में है।

ऐसे इंजिनियरी कारखानों का भविष्य महान है। इनको काम की कमी नहीं होगी और ये खूब उन्नति करेंगे। कम से कम, इनकी विशेष आवश्यकता है। क्यों, आपकी क्या राय है। अगर अपनी नित्य की आवश्यताओं की सभी चीज़ें सुन्दर और सस्ती, हम हिन्दुस्तान में ही बनवाना चाहते हैं तो हमें इन्हें बनाने के लिए मशीनों का प्रयोग करना पड़ेगा। मगर इन मशीनों को बनाने के लिए हमें दूसरी मशीनें चाहियें। यही मशीनें इंजिनीयरी कारखानों में मिलती हैं जहाँ मशीनें मशीनों को पैदा करती हैं।

१२

हिन्दोस्ताँ हमारा

मुझे ऐसा मालूम होता है, मानों इस पुस्तक को पढ़ते समय आप में से कुछ लोग कह रहे हों—"अच्छे-अच्छे हवाई क़िले बनाये जा रहे हैं!" गोबर मत जलाओ! सहयोग कृषि करो! विदेशी कपड़े मत मंगाओ! अधिकाधिक कच्चे लोहे का फ़ौलाद बनाओ! देश के कोने कोने में बिजली पहुँचा दो! सभी आवश्यक मशीनें अपने देश में ही तैयार करो! ऐसा करो, वैसा करो, और बस हिन्दुस्तान में तो घी, दूध की नदियाँ बहने लगेंगी। यह सब तो ठीक है मगर आप सोचते होंगे कि यह सारा काम करेगा कौन? हाँ, कौन? आपने हमारी कमज़ोरी पर ऊँगली रख दी है।

अगर आप मेरा जवाब जानना चाहते हैं तो सुनिये--'आप'। हाँ, आप मेरे युवक महोदय, और आप, मेरी छोटी-सी श्रीमती जी। आप लोग ही इस पुस्तक के आदि में छेड़ी गयी पहेली अनमेल टुकड़ों को यथास्थान बैठा सकते हैं। आप ही उसमें से एक सुंदर चित्र तैयार कर सकते हैं। आख़िर, यह देश आपका है--या होनेवाला है—और अगर आप नहीं करते तो दूसरा कौन करेगा?

'मगर कैसे'? आप पूछेंगे। आख़िर सारे संसार के लोग अपना काम कैसे चलाते हैं? रेलगाड़ियाँ कैसे चलाते हैं, चिट्ठियां कैसे पहुँचाते हैं, जमीन की सिंचाई कैसे करते हैं, देश में चीजें मंगाने और बाहर भेजने की व्यवस्था कैसे करते हैं? यह सारा काम वे अपने देश की सरकार के द्वारा करते हैं। किसी भी देश का राज्य या शासन ही वह साधन या मशीन है जिसके द्वारा यह सारा काम होता है जो हम और आप और किसी भी देश के सभी रहने

वाले किया चाहते हैं। कम से कम, उसे यह सब करना चाहिये यद्यपि वह भी ठीक है कि सभी राज्य या शासन सदा ऐसा करते नहीं।

दुर्भाग्य से, अधिकतर सरकारें बहुत ही सुस्त और निकम्मी होती हैं और उतना ही काम करती हैं जितना करने को लोग उन्हें बाध्य करते हैं। अगर लोग सुस्त या बेफ़िक्र हो जाते हैं तो सरकार भी वैसी ही हो जाती है। किसी ने कहा भी है "जैसी प्रजा होती है वैसा ही राजा मिलता है।" तो सब कुछ इस पर निर्भर है कि आप कैसे नागरिक बनने की तैयारी में हैं, आप अपने देश के बारे में कितनी जानकारी रखते हैं और उसकी समस्याओं को कितना समझते हैं।

इस छोटी सी पुस्तक में यह कोशिश की गयी है कि आप इन बातों को कुछ कुछ समझने लग जायँ। पता नहीं आपने इससे क्या सीखा है? मैं बताऊँ मैंने इससे क्या सीखा है? यही कि हम हिन्दुस्तानी सभी चीजें बड़ी मूर्खता के साथ नष्ट होने दे रहे हैं। यह इस लिए कि हम अपने देश का जीवन व्यवस्थित रूप से चलाने की कोशिश नहीं करते। हम लोग बिल्कुल ही उल्टा-सीधा जीवन बिताते हैं, एक दिन आगे की भी नहीं सोचते, रोज़ कुआँ खोदा और खाया पिया बराबर हुआ। आपने देखा ही है कि हम किस झमेले में जा पड़े हैं।

जब हमारी अपनी सरकार हो जायगी तो आशा है कि सबसे पहले वह एक ऐसी योजना तैयार करेगी जिसके द्वारा आजकल की बरबादी को रोका जा सके और अपने देश और देशवासियों से पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सके।

ऐसी योजना तैयार करने में ही बरसों लग जाते हैं। फिर कहीं उसे हम काम में ला सकते हैं। इसी कारण ऐसी योजना तैयार करने का कुछ थोड़ा-सा काम शुरू कर दिया गया है। इस पुस्तक लिखते समय बम्बई में पंडित जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में राष्ट्रीय योजना समिति की बैठकें हो रही हैं। उसके सदस्यों में स्त्री, पुरुष राजनीतिज्ञ, कालेज प्रोफ़ेसर,

वैज्ञानिक, इंजिनियर और व्यवसायी आदि सभी हैं।

एक सबसे बड़ी कठिनाई जिसका सामना योजना बनानेवालों को करना

आयु औसत आयु के वर्षाङ्क।
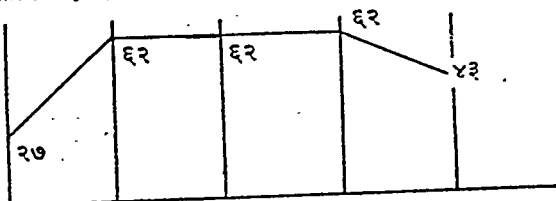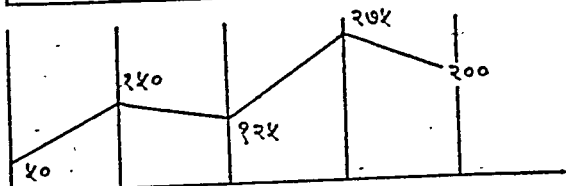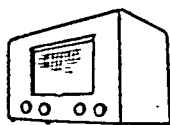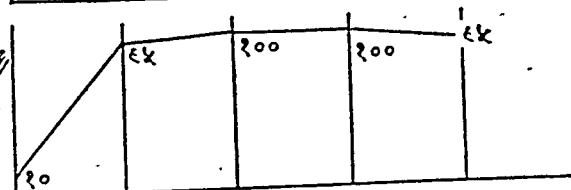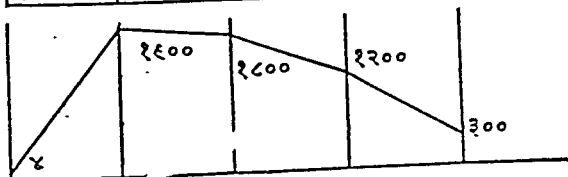
आत्महत्या हर दस लाख में इतने लोग आत्महत्या कर लेते हैं।

साक्षरता फी सैकड़ा बालिग।

रेडियो हर दस हजार आदमी पीछे रेडियो सेट।

पड़ता है यह है कि सभी काम, जिनके होने की आवश्यकता है, एक साथ नहीं किये जा सकते। जितने भी बड़े बड़े परिवर्तन करन हैं सभी के लिए बहुत धन और उद्योग की आवश्यकता है और हिन्दुस्तान में ये दोनों चीजें इतनी नहीं हैं कि यह सब कुछ एक साथ हो सके। एक ही साल में यह भी वह भी सभी काम आप नहीं कर सकते। प्रश्न बराबर उठता रहता है—पहले यह करें या वह?

फिर योजना बनानेवालों के सामने यह प्रश्न भी आता है कि हम कैसे जीवन, कैसे समाज की स्थापना करना चाहते है। एक योजना के अनुसार काम होना चाहिये, इसमें सभी लोग एक राय हैं। मगर योजना किस उद्देश्य से बनें? क्या बड़े २ शहरोंवाले हिन्दुस्तान के लिए या छोटे शहरों और गाँवों वाले हिन्दुस्तान के लिए? बड़े बड़े कारखानों में काम करनेवाले मजदूरोंवाले हिन्दुस्तान या झोपड़ियों में काम करनेवाले कारीगर परिवारों के हिन्दुस्तान के लिए? सहयोग कृषिवाले बड़े बड़े खेतों या किसानों के छोटे छोटे खेतोंवाले हिन्दुस्तान के लिए?

बड़े कठिन प्रश्न हैं। इनका उत्तर देना कठिन है न? खैर, पृष्ट १२५ पर जो चित्र है उसमें हिन्दुस्तान के तथा अन्य औद्योगिक देशों के जीवन की कुछ बातों की तुलना की गयी है। शायद इससे इस प्रश्न का उत्तर देने में आपको सहायता मिले।

अधिकांश युवक और युवतियाँ जो अमेरिका, जर्मनी और इंग्लैंड की आश्चर्यजनक मशीनों को सराहते हैं हिन्दुस्तान में भी बड़े बड़े कारखाने और फैक्टरियाँ स्थापित करना चाहते हैं। यही इच्छा बड़े बड़े व्यापारियों की भी हैं जो मजदूरों से इन मशीनों पर कठिन परिश्रम कराके खूब मुनाफे करना चाहते हैं। मगर कुछ लोग ऐसे भी हैं, उनमें महात्मा गांधी भी हैं, जो इस दृश्य से घबराते हैं और यह चाहते हैं कि लोग अपने अपने घरों में ही अपनी आवश्यक वस्तुएँ बना लें।

"मगर आपके देश में लोहे और इस्पात का बड़ा व्यवसाय नहीं होगा तो

लड़ाई के लिए अस्त्र शस्त्र कहाँ से लायँगे ?"—हमारे मशीनवाले मित्र पूछते हैं।

"मगर हम लड़ाई लड़ना ही नहीं चाहते। देश पर किये गये सभी आक्रमण हमें अहिंसात्मक रीति से रोकने चाहियें," ग्रामपूजा करनेवाले सज्जन समझदारी से उत्तर देते हैं।

"अगर हम मशीनों की सहायता ले सकें तो हमें बहुत अधिक घण्टे काम नहीं करना पड़ेगा और तब हम अधिक आराम कर सकेंगे और जीवन का आनन्द उठा सकेंगे"—हमारे आधुनिक विचारवाले सज्जन कहते हैं।
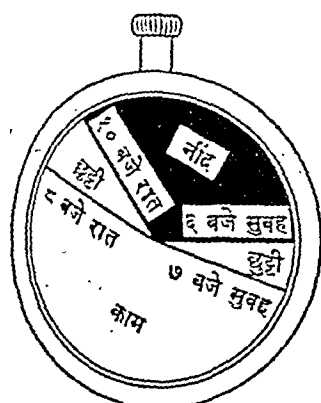
बिना मशीन के
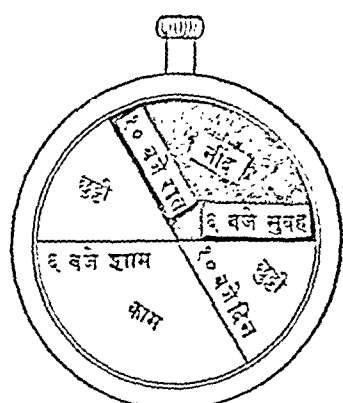
मशीन के साथ

तो उत्तर मिलता है—"खाली समय खतरे की चीज़ है। इससे अनीति का प्रसार होगा। यह न भूलिये कि बेकार आदमियों के सर पर शैतान सवार हो जाता है।"

तो चरखा और हल भी हटाइये जिसमें जीते रहने के लिए हमें चौबीसों घण्टे सिर्फ़ अपने हाथों से काम करना पड़े" कह कर हमारे आधुनिक सज्जन हँस पड़ते हैं।

ग्रामपूजक महाशय कहते हैं, "असल बात यह है कि अभी मनुष्यों ने इतनी उन्नति नहीं की है कि वे बड़ी बड़ी मशीनों का सदुपयोग कर सकें।

इसके बदले वे उनके चंगुल में फँस जाते है, उनकी दासता स्वीकार कर लेते हैं और स्वयं भी मशीन की तरह बनने लग जाते हैं—एक प्रकार के आत्मविहीन मनुष्य, जिनका जीवन कल पुर्जों के जीवन की भांति हो जाता है। इसके अतिरिक्त मशीनवाले व्यवसाय से बेकारी पैदा होती है और मशीन के मालिकों को अवसर मिलता है कि मशीन पर काम करनेवालों का हक हड़प कर जायं।"

"बात तो उल्टी है। मनुष्य ने मशीन पर अधिकार कर रक्खा है, मशीन ने मनुष्य पर नहीं।" हमारे मशीन के भक्त कहते हैं। "मशीन तो मनुष्य को अपने हाथों से अप्रिय और गन्दे काम से बचाती है और दिन भर के काम के लिए पहले से अधिक रुपये दिलवाती है। उनके कारण वस्तुएँ सस्ते में तैयार होती हैं और इस तरह ग़रीब आदमी भी वे वस्तुएँ खरीद सकते हैं जो और हालतों में वे नहीं खरीद सकते। जहां तक बेकार और धोखाधड़ी का सवाल है, ये दोनों ही थोड़े से अमीरों को उन्हीं के लाभ के लिये मशीनों के मालिक बन जाने देने के फल हैं।"

यों ही वादविवाद चलता रहता है। दोनों ही तरह इतनी बातें कहने को हैं कि एक पुस्तक बन जाय! और जैसा कि अधिकतर बहसों में होता है, दोनों ही पक्षों में सत्य का यथेष्ट अंश है। एक बार महात्मा गांधी ने कहा था—"मुझे जो चीज़ बुरी लगती है वह मशीन नहीं है बल्कि मशीनों के लिए बावलापन।...यों तो चर्खा भी एक निहायत ही खूबसूरत मशीन है।"

अधिकतर लोग यह बात भूल जाते हैं कि विज्ञान के अन्य आविष्कार की तरह मशीन भी न अच्छी है न खराब। यह पक्ष रहित सी है। एक हवाई जहाज़ गोले गिराकर जानें ले सकता है मगर साथ ही साथ दूर स्थानों में आवश्यकतानुसार, तेज़ी से डाक्टर या दवाई पहुँचा कर, जानें बचा भी सकता है। मशीन से

हम जो काम लें वही काम देगी। इस लिए मशीन को नष्ट करना इसकी दवा नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि लोगों को बुद्धि और दया के साथ मशीनों का उपयोग करना सिखाया जाय।

इसके अलावा जहाँ तक हिन्दुस्तान का प्रश्न है अगर यह देश मशीनों और कारखानों का देश बन जाय तो इसके कारण न गद्गद् न चिन्तित ही होने की आवश्यकता है। यह न भूलिये कि हर १०० हिन्दुस्तानी में ७२ खेती करते हैं। और लगभग ९० गाँवों में रहते हैं। २० लाख से कम कारखानों में काम करते हैं। अगर इस बड़े पैमाने के उद्योगधन्धों की ओर आँधी तूफ़ान की गति से भी बढ़ते जाँय तो भी, १० वर्ष के बाद, उद्योग-धन्धों में २ करोड़ आदमियों के शामिल कर लिये जाने के बाद भी, कृषि में ४० करोड़ आदमी बच रहेंगे।

तो अधिक से अधिक उन्नति करने पर भी, हिन्दुस्तान कृषिप्रधान देश ही रहेगा। किसानों और हाथ से काम करनेवाले कारीगरों का देश; बड़े बड़े शहरों में काम करनेवालों का नहीं।

हम ऐसी योजना चाहते हैं जिसके अनुसार इस देश की अधिक से अधिक जनशक्ति उपयोग हो और उसके द्वारा अधिक से अधिक उत्पादन हो। अधिक से अधिक काम, अधिक से अधिक उत्पादन और न्यायोचित वितरण हमारा मन्त्र होना चाहिए।

क्या इसके माने यह हैं कि उद्योग और व्यवसाय की समस्याओं की हमें चिन्ता न होनी चाहिये? इसके विपरीत, इसका अर्थ यह होता है कि हमारे देश की ज़मीन पर जो भारी बोझ है उसे हल्का करने के लिए हमें अपने देश में व्यवसाय की वृद्धि के काम को तेज़ी से आगे बढ़ाना चाहिये। मगर इसके माने यह भी होते हैं कि हमारे छोटे पैमाने के उद्योगधन्धों को ग्रामीण भारत में, हिन्दुस्तान के गाँवों और छोटे छोटे शहरों में, अपना घर बनाना होगा क्योंकि दस वर्ष के बाद भी बड़े पैमाने के उद्योग व्यवसाय में, ६ सैकड़े से अधिक आदमी नहीं लिये जा सकते। इस तरह, जिन लोगों

की परवरिश ज़मीन से नहीं हो सकती वे अपना स्थान तथा अपनी प्राकृतिक परिस्थिति बदले बिना, अपने लिए कोई न कोई काम ढूंढ़ निकाल सकते हैं। जब किसानों का बेकारी का समय होता है वे किसी न किसी दस्तकारी में अपना खाली समय लगा सकेंगे। जिन लोगों की खेती में आवश्यकता नहीं है वे तरह तरह के घरेलू उद्योगधन्धों में अपना सारा समय लगा सकते हैं।

कितने ही प्रकार के देहाती उद्योग चलाये जा सकते हैं। आजकल सबसे अधिक चलन तो चर्खे और कर्घे पर कपड़े बुनने के धन्धो की है। ये कपड़े सूती, रेशमी और ऊनी सभी तरह के होते हैं। इस धन्धे में लाखों आदमी लगे हुए हैं।

और कितने ही तरह के धन्धे हैं जो इस देश में सैकड़ों वर्षों से चले आये हैं और मशीन की बनी चीज़ों के मुकाबले भी अभी तक चल रहे हैं। उदाहरण के लिये धातुओं पर किये जानेवाले काम को ही ले लीजिय। और गांव का लोहार तो है ही। कितने ही अच्छे अच्छे कारीगर हैं जो पीतल, तांबा, चांदी और सोने की, रसोई की चीज़ों से लेकर सुन्दर से सुन्दर गहने भी बनाते हैं।

कुछ लोग हाथी दांत और संगमरमर पर काम करते हैं। दूसरे लोग कालीन आदि बनाते हैं। तरह तरह के लकड़ी के काम नावों और कुर्सी टेबुल इत्यादि से लेकर बच्चों के छोटे छोटे खिलौने तक, किये जाते हैं। बेंत की टोकरियां या बक्स आदि भी बनाये जाते हैं। मिट्टी से कुम्हार चीज़े तैयार करता है और जानवरों की खाल से चमड़े और जूते बनानेवालों का धन्धा चलता है।

बीज को पेर कर तेल निकालते हैं और तेल से ही साबुन तैयार करते हैं। ईख के रस से गुड़ बनता है। चावल को हाथ से कूटते हैं। यह मशीन के कूटे हुए चावल से अधिक लाभदायक होता है। फल को देर तक रखने की व्यवस्था भी की जाती है ! हाथ से स्याही और कागज़ भी बनाये जाते हैं।

नैपाल का हाथ का बना कागज़ एक हजार वर्ष तक काम देता देखा गया है।

जो लोग दूध, घी, अण्डे इत्यादि का व्यापार करना चाहते हैं उनके लिए गाय, भैंस, बकरी और मुर्गी हैं। मधुमक्खियों को पालकर भी आमदनी की जा सकती ह।

अगर गांवों में यह सब धन्धे किये जा सकते हैं तो अधिक से अधिक संख्या में हमारे किसान इनमें लग क्यों नहीं जाते और हमारे कारीगरों की हालत इतनी बुरी क्यों है।

इसका उत्तर यह है कि उनके पास तीन चीज़ें नहीं हैं—पूँजी, कारीगरी और उनकी चीज़ों के लिए बाजार। हिन्दुस्तान के अधिकतर गांववाले इतने ग़रीब हैं कि कच्चा माल और सीधे सादे यन्त्र भी नहीं ख़रीद सकते। उनकी कारीगरी बहुत नीचे दर्जे की है और उनकी पसन्द स्वाभाविकतया अच्छी होते हुए भी पुरानी है। और जो वह बना पाते हैं उन्हें कहाँ और कैसे बेचें यह वे नहीं जानते।

अगर इन छोटे छोटे उद्योगधन्धों की उन्नति करना है और उन्हें लोकप्रिय बनाना है तो इनके पैर जमाने के लिए इन्हें बहुत सहायता दनी होगी। सरकार को खुद या सहयोग समितियों के द्वारा इन घरेलू धन्धो को पूंजी कर्ज़ देनी होगी या इससे भी अच्छा यह होगा कि वह उन्हें कच्चा माल दे जिसमें कि महाजनों से उनका छुटकारा हो।

इसके बाद यह आवश्यक है कि ऐसे स्कूल खोले जायँ जहाँ नये नये यन्त्र, मेहनत बचानेवाली मशीनें और नयी डिज़ाइन वगैरह खोज निकाली जायँ और कुछ चुने हुए कारीगर सिखाए जायँ। फिर ये लोग गाँवों में घूम घूम कर इन यन्त्रों का इस्तेमाल करना और इससे भी अच्छी अच्छी चीज़ें बनाना सिखायेंगे।

इन चीज़ों की बिक्री का काम बिक्री अफ़सरों या सहयोग समितियों के हाथ में होना चाहिए जिसमें काम करनेवालों को अपनी वस्तुओं का अच्छा मूल्य मिल सके।

जापान और स्विटज़रलैंड में इन्हीं तरीकों से छोटे छोटे उद्योगधन्धे बहुत अधिक और बड़ी तेज़ी से फैल गये हैं।

फिर भी कुछ चीज़ें तो हाथ से सस्ती बन सकती हैं मगर उसी मेल की कारख़ानों की बनी चीज़ों से सस्ती न होंगी। इस लिए बहुत सी छोटी छोटी चीज़ें कारख़ानों में न बनायी जाँय ऐसी आज्ञा सरकार को जारी करना होगा।

साथ ही साथ गाँवों के उद्योगधन्धों के लिए शहरों के बड़े २ कारखानों की बनी कुछ आवश्यक वस्तुएँ लेना होगा जैसे इंजिनियरी कारख़ानों से अच्छे यन्त्र और छोटी छोटी मशीनें और बड़े बड़ केमिकल कारखानों से रंग तथा अन्य केमिकल। उन्हें पानी से बिजली पैदा करनेवाले कारखानों से सस्ती और यथेष्ट बिजली चाहिये ताकि उनके यन्त्र ख़ूब तेज़ी से चलाये जा सकें जैसे वे अपने हाथों से कभी नहीं चला सकते। तो हमने देखा कि गाँव और शहर एक दूसरे से गुँथे हुए हैं और एक दूसरे के बिना उनका जीवन कितना असम्भव है।

मगर क्या इसके माने यह हैं कि कारख़ाने और फ़ैक्टरियों के थोड़े से पूँजीवाले मालिक इस देश के लोगों के जीवन पर अधिकार जमा लें और उनको हानि पहुँचा कर आप बड़े बड़े मुनाफ़े करें? अगले पृष्ट पर का चित्र देखिये। यह आपको बतलाता है कि हिन्दुस्तान में आज थोड़े से लोग किस तरह बहुत सा रुपया पैदा करते हैं और अधिकतर लोग बहुत ही कम। आप थोड़े से अमीर लोगों को पहाड़ पर बहुत ऊँचे पर देखते हैं और बाक़ी लोग नीचे विस्तृत मैदान में फैले हुए हैं। यह हमारा ध्यान एक बहुत बड़े ख़तरे की ओर आकर्षित करता है। हमें इसका कैसे विश्वास हो कि बड़े कारख़ानों के मालिक, अपने उस महत्वपूर्ण स्थान का उपयोग करके पहाड़ पर और भी ऊँचे चढ़ते जाने की कोशिश में नहीं लगे हुए हैं?

इसका उपाय बिल्कुल आसान है। इन बड़े बड़े कारख़ानों के कोई मालिक ही नहीं होने चाहियें। तो फिर इन कारख़ानों को चलायेगा कौन?

रुपया

हमलोग सब मिलकर अपनी हकूमत के द्वारा इन्हें चलायेंगे। आखिर इसमें आश्चर्य की बात क्या है? हम लोग अपनी चिट्ठियों को यहाँ से वहाँ लेजाने के लिये व्यापारियों को ठेका तो देते नहीं। हमारा पोस्ट आफ़िस यह काम बड़ी तेज़ी से और बड़ी अच्छी तरह कर देता है। हमारे शहरों में पानी पहुँचाने का काम हमारी म्युनिसिपैलिटियाँ हमारी ओर से करती हैं। हिन्दुस्तान की रेलवे अब सरकार के बनाये हुए रेलवे बोर्ड के द्वारा चलाई जाती हैं। तो ऐसा कौन सा कारण है कि बिजली पैदा करने और लोहा, फ़ौलाद, मशीनें और केमिकल तैयार करने का काम राज्य अपने हाथ में न लेकर, थोड़े से व्यापारियों पर छोड़ दे?
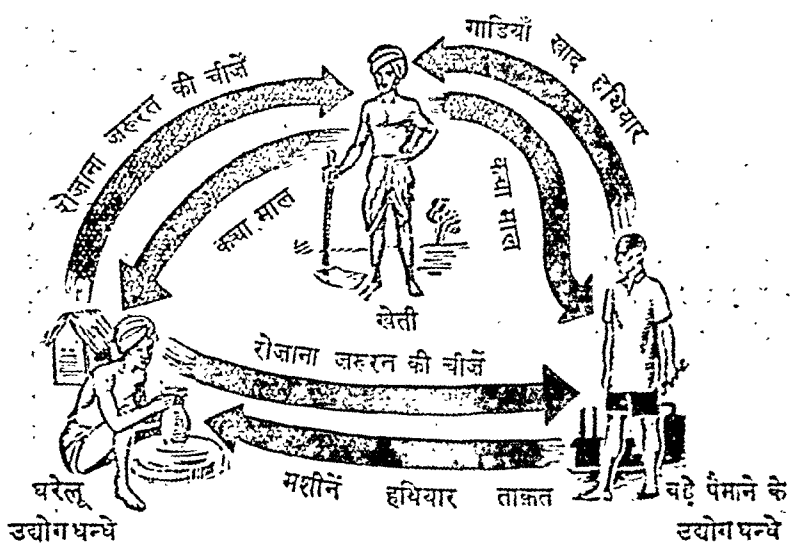
कोई भी कारण नहीं है। इसीसे बहुत लोग यह सोचते हैं कि कुछ थोड़े से मुख्य व्यवसाय यानी ऐसे व्यवसाय, जिन पर दूसरे व्यवसाय तथा लोगों का जीवन निर्भर है, सारे राष्ट्र की सम्मिलित सम्पत्ति होनी चाहिये, और उसीके लाभ के लिये चलाये जाने चाहियें।

तो आनेवाले हिन्दुस्तान का हमारा जो चित्र है उसमें बड़े बड़े व्यवसायों की मिल्कियत, राज्य के द्वारा, हिन्दुस्तान के सभी लोगों की होगी। और छोटे छोटे व्यवसाय एक एक आदमी के या सहयोग समितियों के अधिकार में होंगे! इनके साथ साथ निःसंदेह, हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा व्यवसाय—खेती—तो है ही।

आपने देखा कि हमारे देश के आर्थिक जीवन के यह तीनों हिस्सेदार एक दूसरे की किस तरह मदद करेंगे और एक दूसरे से मदद लेंगे।

मगर हमें एक बात करनी है। आज का हिन्दुस्तान्, कृषिप्रधान देश है, दूसरे उन्नत देशों के लकड़हारों और भिश्तिओं का काम करता है। आज का इंग्लैंड उद्योग-प्रधान देश है। अपने देश के लिये इन दोनों के बीच में कोई स्थान निश्चित करना होगा। हमारे देश में और बहुत से व्यवसायों की आवश्यकता है। मगर उन्हें अपने देश में चारों ओर झोपड़ीओं और छोटे छोटे कारखानों में स्थापित करना होगा। इस तरह हम मशीनों सें पूरा लाभ भी उठायेंगे और उसकी हानियों से भी बचे रहेंगे।

अन्य देशों के लोगों की तरह हमें भी अच्छी वस्तुएं खाने, पहिनने और इस्तेमाल करने के लिये और अधिक संख्या में चाहियें। मगर यह सब वस्तुएँ हम इस लिये नहीं चाहते कि ये जीवन की अच्छी से अच्छी वस्तुएँ हैं; इन्हें हम इस लिये चाहते हैं कि इनसे स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों, सभी को, सम्पूर्ण जीवन मिलता है और तभी वे पूरी शक्ति लगाकर सेवा भी कर सकते हैं। हमारे चारों ओर हिन्दुस्तान का विशाल क्षेत्र है और हम में से हर एक के अन्दर हमारे हिन्दुस्तान का कुछ अंश है। हमारे आसपास जो चीजें हैं—उन्हें हम जगाना, उनम जान डालना चाहते हैं, ताकि हम अपने अन्दर भी जीवन ज्योति जगा सकें। हमें अपने देश पर गर्व है और हम चाहते हैं वह भी हम पर थोड़ा गर्व कर सके।

तो आइये हम सब मिल कर महाकवि मुहम्मद एकबाल का यह गाना गायें :—

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा,

हम बुलबुलें हैं इसकी, यह गुलिस्तां हमारा ॥

पर्वत वह सबसे ऊँचा, हमसाया आसमां का,

वह संतरी हमारा वह पासवाँ हमारा ॥

गोदी में खेलती हैं इसकी हज़ारों नदियाँ,

गुलशन है जिसके दम से, रश्के जहाँ हमारा ॥

मज़हब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना,

हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा ॥